प्यासे थे। वे उस बात पर ध्यान न देकर पानी पी लिए और अचेत होकर गिर पड़े। इसके बाद सहदेव, अर्जुन और भीम जल पीने और लेने के लिए गये और पीकर अचेत हो गये। अन्ततः युधिष्ठिर गये। जैसे जल पीने के लिए जलाशय में उतरे, वैसे आवाज आयी कि मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर जल पीओ।

युधिष्ठिर–मैं अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दूंगा। तुम प्रश्न करो।

यक्ष–सूर्य को कौन ऊपर उठाता है, उसके चारों ओर कौन चलते हैं, उसे अस्त कौन करता है और वह किसमें प्रतिष्ठित है?

युधिष्ठिर–ब्रह्म सूर्य को ऊपर उठाता है, देवता उसके चारों तरफ चलते हैं, धर्म उसे अस्त करता है और वह सत्य में प्रतिष्ठित है।

यक्ष–मनुष्य श्रोत्रिय (ज्ञानी) किससे होता है, महान पद कैसे प्राप्त होता है, किसके द्वारा साथियों से युक्त होता है और किससे बुद्धिमान होता है?

युधिष्ठिर–वेदों का अध्ययन करने से मनुष्य श्रोत्रिय होता है, तप से महान पद प्राप्त करता है, धैर्य से संगी-साथियों से युक्त होता है और वृद्ध पुरुषों की सेवा से बुद्धिमान होता है।

यक्ष–ब्राह्मणों में देवत्व क्या है? उनमें सत पुरुषों के समान धर्म क्या है, उनका मनुष्य-भाव क्या है और उनमें असत मनुष्यों-जैसा आचरण क्या है?

युधिष्ठिर–वेदों का अध्ययन ब्राह्मणों का देवत्व है, तप सत्पुरुषों का-सा धर्म है, मरना मनुष्य-भाव है और परनिन्दा करना असत-मनुष्यों जैसा आचरण है।

यक्ष–क्षत्रियों में देवत्व क्या है, उनमें सत-पुरुषों का-सा धर्म क्या है, उनका मनुष्य-भाव क्या है और उनमें असत-पुरुषों का-सा आचरण क्या है?

युधिष्ठिर–बाणविद्या क्षत्रियों का देवत्व है, यज्ञ उनका सत पुरुषों का-सा धर्म है, भय मानवीय भाव है और शरण में आये हुए दुखियों का परित्याग कर देना असत पुरुषों का-सा आचरण है।

यक्ष–कौन एक वस्तु यज्ञिय साम है, कौन एक यज्ञिय यजु है, कौन एक वस्तु यज्ञ का वरण करती है और किस एक का यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता?

युधिष्ठिर–प्राण ही यज्ञिय साम है, मन ही यज्ञिय यजु है, ऋचा ही यज्ञ का वरण करती है और उसी का यज्ञ अतिक्रमण नहीं करता।

यक्ष–किसान के लिए कौन-सी वस्तु श्रेष्ठ है, बिखेरने वालों के लिए क्या श्रेष्ठ है, प्रतिष्ठित धनियों के लिए क्या श्रेष्ठ है और बच्चे पैदा करने वालों के लिए क्या श्रेष्ठ है?

युधिष्ठिर–किसानों के लिए वर्षा श्रेष्ठ है, बिखेरने वालों के लिए बीज श्रेष्ठ है, प्रतिष्ठित धनियों के लिए गायें श्रेष्ठ हैं और बच्चे पैदा करने वालों के लिए पुत्र श्रेष्ठ है।

यक्ष–ऐसा कौन मनुष्य है जो जानते-समझते, लोक-सम्मानित होते हुए और श्वास लेते हुए जीवित नहीं है?

युधिष्ठिर–जो देव, अतिथि, कुटुम्बी, पिता और आत्मा का पोषण नहीं करता, वह जीते हुए मृत है।

यक्ष–पृथ्वी से भारी क्या है, आकाश से ऊंचा क्या है, वायु से तेज गतिशील क्या है और तिनकों से अधिक संख्या में क्या है?

युधिष्ठिर–माता का महत्त्व पृथ्वी से अधिक है, पिता का महत्त्व आकाश से ऊंचा है, मन वायु से अधिक तेज गतिशील है और चिताएं तिनकों से अधिक (असंख्य) हैं।

यक्ष–कौन सोने पर भी आंखें नहीं मूंदता, पैदा होने के बाद भी कौन निष्क्रिय है, किसमें हृदय नहीं है, और कौन वेग से बढ़ता है?

युधिष्ठिर–मछली सोते समय आंखें नहीं मूंदती, अण्डा पैदा होने पर भी चेष्टा नहीं करता, पत्थर में हृदय नहीं होता और नदी वेग से बढ़ती है।

यक्ष–प्रवासी का मित्र कौन है, गृहस्थ का मित्र कौन है, रोगी का मित्र कौन है और मरणासन्न का मित्र कौन है?

युधिष्ठिर–प्रवासी का मित्र सहयात्री है, गृहस्थ का मित्र पत्नी है, रोगी का मित्र वैद्य है, मरणासन्न का मित्र दान है।

यक्ष–सभी देहधारियों का अतिथि कौन है, सनातन धर्म क्या है, अमृत क्या है और यह सारा जगत क्या है?

युधिष्ठिर–अग्नि समस्त प्राणियों का अतिथि है, अविनाशी सनातन धर्म है, गौ का दूध अमृत है और वायु सारा जगत है।

यक्ष–अकेला कौन विचरता है, एक बार उत्पन्न होकर पुनः कौन उत्पन्न होता है, शीत की दवा क्या है, महान क्षेत्र क्या है?

युधिष्ठिर–सूर्य अकेला विचरता है, चंद्रमा बार-बार जन्मता है, आग शीत की दवा है और पृथ्वी बड़ा भारी क्षेत्र है।

यक्ष–धर्म का मुख्य स्थान क्या है, यश का मुख्य स्थान क्या है, स्वर्ग का मुख्य स्थान क्या है और सुख का मुख्य स्थान क्या है?

युधिष्ठिर–दक्षता धर्म का मुख्य स्थान है, दान यश का मुख्य स्थान है, सत्य स्वर्ग का मुख्य स्थान है और शील सुख का मुख्य स्थान है।

यक्ष–मनुष्य का आत्मा क्या है, इसका दैवकृत सखा कौन है, इसके जीवन का सहारा क्या है और इसका परम आश्रय क्या है?

युधिष्ठिर–पुत्र मनुष्य का आत्मा है, पत्नी इसकी दैवकृत सखा है, वर्षा जीवन का सहारा है और दान इसका परम आश्रय है।

यक्ष–उत्तम पुरुषों का उच्च गुण क्या है, उत्तम धन क्या है, प्रधान लाभ क्या है और उत्तम सुख क्या है?

युधिष्ठिर–दक्षता उत्तम गुण है, शास्त्र ज्ञान प्रधान धन है, आरोग्य श्रेष्ठ लाभ है और संतोष परम सुख है।

यक्ष–श्रेष्ठ धर्म क्या है, नित्य फल वाला धर्म क्या है, किसको वश में कर लेने से मनुष्य शोक नहीं करता और किनकी मित्रता नष्ट नहीं होती?

युधिष्ठिर–दया श्रेष्ठ धर्म है, वेदोक्त धर्म नित्य फल वाला है, मन को वश में रखने से मनुष्य शोक नहीं करता और पवित्र–हृदय वाले मनुष्य के साथ की गयी मित्रता नष्ट नहीं होती।

यक्ष–किस वस्तु को त्याग देने से मनुष्य प्रिय होता है, किसको त्यागकर शोक नहीं करना पड़ता, किसे त्यागकर मनुष्य अर्थयुक्त होता है और किसे त्याग कर सुखी होता है?

युधिष्ठिर–अभिमान को त्यागकर मनुष्य प्रिय होता है, क्रोध को त्याग देने पर मनुष्य शोक नहीं करता, काम को त्यागकर मनुष्य अर्थयुत होता है और लोभ को त्यागकर मनुष्य सुखी होता है।

यक्ष–ब्राह्मण को किसलिए दान दिया जाता है, नट और नाचने वालों को क्यों दान दिया जाता है, सेवकों को क्यों दान दिया जाता है और राजाओं को क्यों दान दिया जाता है?

युधिष्ठिर–ब्राह्मण को धर्म की दृष्टि से दान दिया जाता है, नट और नाचने वालों को यश के लिए दान दिया जाता है, सेवकों को उनके जीवन के पोषण के लिए दान दिया जाता है और राजा को भय से दान (कर) दिया जाता है।

यक्ष–संसार किस वस्तु से ढका है, किस हेतु से यह प्रकाशित नहीं होता, मनुष्य मित्र को क्यों त्याग देता है, और स्वर्ग में किस कारण नहीं जा सकता?

युधिष्ठिर–संसार अज्ञान से ढका है, तमोगुण के नाते वह प्रकाशित नहीं होता, लोभ के कारण मनुष्य मित्रों को त्याग देता है, और आसक्ति के कारण मनुष्य स्वर्ग से वंचित रह जाता है।

यक्ष–कौन मनुष्य मरा है, राष्ट्र कैसे मर जाता है, श्राद्ध कैसे मर जाता है

और यज्ञ कैसे नष्ट हो जाता है?

युधिष्ठिर–दरिद्र मनुष्य मरा हुआ है, शासक के बिना राज्य नष्ट हो जाता है, विद्वान ब्राह्मण के बिना श्राद्ध मर जाता है और बिना दक्षिणा के यज्ञ नष्ट हो जाता है।

यक्ष–दिशा क्या है, जल क्या है, अन्न क्या है, विष क्या है और श्राद्ध का समय क्या है? इसे बताकर पानी पीओ और जल ले जाओ।

युधिष्ठिर–पवित्र मनुष्य दिशा है, आकाश जल है, पृथ्वी अन्न है, प्रार्थना (मांगना) विष है और ब्राह्मण श्राद्ध का समय है अथवा यक्ष! इस विषय में तुम्हारा क्या विचार है?

यक्ष–तप क्या है, दम क्या है, क्षमा क्या है और लज्जा क्या है?

युधिष्ठिर–धर्म (सहन) में दृढ़ रहना तप है, मन का शांत रहना दम है, सहन करना क्षमा है, गलत आचरण का त्याग करना लज्जा है।

यक्ष–ज्ञान क्या है, शम क्या है, दया क्या है और आर्जव क्या है?

युधिष्ठिर–सच्चाई को समझना ज्ञान है, मन की शांति शम है, सब सुखी रहें यह भाव दया है, समता का बरताव आर्जव (सरलता) है।

यक्ष–दुर्जय शत्रु कौन है, अनंत व्याधि क्या है, साधु कौन है और असाधु कौन है?

युधिष्ठिर–क्रोध दुर्जय शत्रु है, लोभ अनंत व्याधि है, सबका हितचिंतक साधु है और निर्दय असाधु है।

यक्ष–मोह क्या है, मान क्या है, आलस्य क्या है और शोक क्या है?

युधिष्ठिर–धर्ममूढ़ता मोह है, अपने आप को बड़ा मानना मान एवं अभिमान है, धर्म का पालन न करना आलस्य है और अज्ञान शोक है।

यक्ष–स्थिरता क्या है, धैर्य क्या है, परम स्नान क्या है और दान क्या है?

युधिष्ठिर–धर्म (कर्तव्य) में स्थिर रहना स्थिरता है, इंद्रियों पर संयम धैर्य है, मन का मैल त्याग देना परम स्नान है और प्राणियों की रक्षा करना दान है।

यक्ष–पंडित कौन है, नास्तिक कौन है, काम क्या है और मत्सर किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर–धर्मज्ञ पंडित है, मूर्ख नास्तिक है, काम जन्म-मरण का कारण है और हृदय की जलन मत्सर (ईर्ष्या) है।

यक्ष–अहंकार क्या है, दंभ क्या है, परम दैव क्या है और पैशुन्य क्या है?

युधिष्ठिर–महा अज्ञान अहंकार है, अपने को धर्मात्मा प्रसिद्ध करना दम्भ है, दान का फल–कर्म का परिणाम दैव कहलाता है और दूसरे की बुराई बताना पैशुन्य है।

यक्ष–धर्म, अर्थ और काम परस्पर विरोधी हैं। इनका एक स्थान पर कैसे संयोग हो सकता है?

युधिष्ठिर–जब धर्म और पत्नी दोनों संतुलित होकर मनुष्य के वश में होते हैं तब धर्म, अर्थ और काम एक साथ सहज रूप में रहते हैं।

यक्ष–भरतश्रेष्ठ! किसको अक्षय नरक प्राप्त होता है?

युधिष्ठिर–जो किसी को देने के लिए बुलाकर नहीं देता है, वह अक्षय नरक में जाता है। जो वेद, शासक, पवित्रात्मा, देवता, माता–पिता का निरादर करता है, वह अक्षय नरक में जाता है। धन रहते हुए जो उसका भोग नहीं करता, दान नहीं देता, और कहता है कि मेरे पास नहीं है, वह अक्षय नरक में जाता है।

यक्ष–कुल, आचार, स्वाध्याय और शास्त्र-श्रवण, इनमें से किसके द्वारा ब्राह्मणत्व सिद्ध होता है?

युधिष्ठिर–नकुल से कोई ब्राह्मण होता है, न स्वाध्याय से और न शास्त्र-श्रवण से; ब्राह्मत्व का निःसंशय कारण केवल सदाचार है– *"कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः* (वन पर्व ,)।" इसलिए प्रयत्न से सदाचार की रक्षा करे। आचरण नष्ट होने पर स्वयं नष्ट है। "पढ़ने वाले, पढ़ाने वाले और शास्त्रों का विश्लेषण करने वाले सब व्यसनी और मूर्ख हैं; जो सदाचार सम्पन्न है, वह पंडित है।"[1] चारों वेद पढ़कर जो दुराचारी है, वह शूद्र से भी नीच है। जो जितेंद्रिय यज्ञशील है वह ब्राह्मण है।

यक्ष–मधुरभाषी को क्या मिलता है, विचारकर काम करने वाले को क्या मिलता है, बहुत मित्र वाले को क्या मिलता है और धर्मनिष्ठ को क्या मिलता है?

युधिष्ठिर–मधुरभाषी सबका प्यारा होता है, विचारकर काम करने वाले को अधिकतर सफलता मिलती है, बहुत मित्रों वाला सुख से रहता है और धर्मनिष्ठ को अक्षय सुख मिलता है।

---

1. **पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।**
   सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः
   (वन पर्व, अध्याय , श्लोक)

यक्ष–सुखी कौन है, आश्चर्य क्या है, मार्ग क्या है, और वार्ता क्या है? इन चार प्रश्नों का उत्तर देकर पानी पाओ।

युधिष्ठिर–जिसके ऊपर कोई कर्ज नहीं है, जो परदेश में नहीं है अपितु अपने घर में है, वह पांच-छह दिन पर भी केवल साग-पात पकाकर खाने वाला सुखी है।

"प्राणी प्रतिदिन यमलोक जाते हैं, लेकिन जो अभी शेष हैं, वे सदैव यहीं रहना चाहते हैं, इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा?"[1]

"तर्क की कहीं स्थिरता नहीं है, श्रुतियां बहुत हैं। एक ऋषि नहीं है जिसके वचन को आंख मूंदकर प्रमाण मान लिया जाय। धर्म का तत्त्व गूढ़ता में छिपा है; इसलिए पवित्रात्मा शांत पुरुष जिस पथ से चलते हैं वही कल्याणार्थी का पथ है।"[2]

"काल इस महा मोह के कढ़ाह में प्राणियों को डालकर, रात-दिन रूपी इंधन में सूर्य रूपी आग लगाकर महीने और ऋतु की करछुली से उलट-पलट और रगड़कर पका रहा है; यही वार्ता है।"[3]

यक्ष–परन्तप! तुमने मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर ठीक दिया है। अब तुम पुरुष और धनी की व्याख्या कर दो।

युधिष्ठिर–जिसके पवित्र कर्मों की सुकीर्ति संसार में गूंजती है वह पुरुष है। "जो मनुष्य प्रिय-अप्रिय, सुख-दुख और भूत-भविष्य के द्वन्द्वों में समता एवं शान्ति से जीता है, वही धनी है।"[4]

यक्ष–राजन! तुमने सच्चे धनी की व्याख्या कर दी है; इसलिए अपने भाइयों में से जिस एक को चाहो वह जीवित हो सकता है।

युधिष्ठिर–नकुल को जीवित कर दें।

---

1. **अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्।**
   शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्
2. **तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।**
   धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः
3. **अस्मिन् महामोहमये कटाहे सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।**
   मासर्तुदर्वीपरिघट्टनेन भूतानि कालः पचतीति वार्ता
   (वन पर्व, अध्याय)
4. **तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे तथैव च।**
   अतीतानागते चोभे स वै सर्वधनी नरः वन पर्व , ।।

यक्ष–तुमने अपने सहोदर और योग्यतम भाइयों अर्जुन और भीम में से किसी एक को क्यों नहीं जीवित होने की बात कही?

युधिष्ठिर–मैं कुंती-पुत्र हूं, नकुल माद्री-पुत्र है। कुंती और माद्री दोनों माताएं मेरे लिए समान हैं, अतएव नकुल के जी जाने से दोनों माताओं के पुत्र जीवित रहेंगे।

"धर्म का नाश किया जाय तो वह नष्ट धर्म उसके कर्ता का नाश करता है और यदि धर्म की रक्षा की जाय तो रक्षित धर्म उसके कर्ता की रक्षा करता है। इसलिए मैं धर्म का त्याग नहीं करता हूं, कि वह नष्ट धर्म मेरा भी नाश न कर दे।"[1] वस्तुतः दया ही धर्म है।

यक्ष–युधिष्ठिर! तुमने अर्थ और काम से भी अधिक दया और समता का आदर किया है, इसलिए तुम्हारे सभी भाई जीवित हो जायं।

सभी पांडव जीवित हो गये। यक्ष बगुला रूपधारी था और सरोवर पर एक पैर से खड़ा था जिसने उपर्युक्त सारे प्रश्न किये हैं। युधिष्ठिर से उसने कहा कि मैं तुम्हारा जन्मदाता पिता धर्मराज हूं। तुम्हें देखने की इच्छा से यहां आया हूं। तुम मुझे पहचानो। यश, सत्य, दम, शौच, सरलता, लज्जा, स्थिरता, दान, तप और ब्रह्मचर्य मेरे शरीर हैं। अहिंसा, समता, शांति, दया और अमत्सर (ईर्ष्या का त्याग) मेरे (धर्म) पास पहुंचने के द्वार हैं। भूख-प्यास, शोक-मोह तथा जरा-मृत्यु छह दोष हैं। भूख-प्यास दो दोष जन्म से रहते हैं, शोक-मोह तरुण अवस्था में आते हैं और जरा-मृत्यु बुढ़ापा में आते हैं। जिसने मोह-शोक को जीत लिया उसका बेड़ा पार है।

यक्ष ने युधिष्ठिर से कहा–वर मांग लो। युधिष्ठिर ने कहा–हम बारह वर्ष का वनवास बिता चुके हैं। तेरहवां वर्ष अज्ञातवास करना है। आप हमें ऐसा वर दें कि हमें पूरा एक वर्ष कोई पहचान न सके। यक्ष ने यह वर दिया और अंतर्धान हो गया।

जो मनुष्य यक्ष और युधिष्ठिर के संवाद का पाठ करता है वह जितेंद्रिय तथा स्ववश होकर पुत्र-पौत्रों से सम्पन्न होकर सौ वर्ष जीता है। जो इस मनोहर उपाख्यान को स्मरण रखेगा, उसका मन अधर्म में, मित्रों के बीच फूट डालने में, दूसरों की सम्पत्ति हरने में, परस्त्री गमन में और कृपणता में नहीं लगेगा (अध्याय –)।

---

1. **धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।**
तस्माद् धर्मं न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत् **वन पर्व , ।**

मीमांसा

पांचों पांडव काम्यक वन से द्वैतवन में लौट आये हैं। यक्ष प्रश्न की भूमिका में आता है कि एक ब्राह्मण की अरणि, अर्थात यज्ञ के लिए आग मथने की लकड़ी जब एक बनैले हिरन के सींग में फंसी और हिरन भाग निकला, तब ब्राह्मण ने हल्ला मचाया। हल्ला सुनकर पांचों पांडव हिरन के पीछे दौड़े। दौड़ते-दौड़ते थक गये, परन्तु हिरन से अरणि ले नहीं पाये। पांचों पांडव थककर एक बरगद-पेड़ के नीचे बैठ गये। युधिष्ठिर ने नकुल से कहा कि हम सब प्यासे हैं, जहां जलाशय हो, वहां से तरकशों में भरकर पानी लाओ। नकुल आते हैं और जलाशय के पास पानी पीकर अचेत होते हैं। यही दशा चारों भाइयों की होती है। युधिष्ठिर जाते हैं तब यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"आरण्यक पर्व के महान कथा-समुद्र की अंतिम हिलोर के रूप में यक्ष प्रश्न नामक एक अद्‌भुत प्रकरण सुरक्षित रह गया है। इस यक्ष-युधिष्ठिर संवाद के अन्त में फलश्रुति दी गयी है, जो इस बात का संकेत है कि यह प्रकरण महाभारत का मौलिक अंग न था, कहीं से जोड़ा गया। जिस स्रोत से यह लिया गया, वह लोक-साहित्य और वेद-साहित्य का समिश्रण था, जैसा कि इसमें आये हुए दो प्रकार के प्रश्नों से प्रकट होता है। उदाहरण के लिए यज्ञिय साम क्या है? 'प्राण यज्ञिय साम है' यह वैदिक धरातल से आया हुआ प्रश्नोत्तर है। अथवा *'किं स्विदेको विचरति* (–)' तो यजुर्वेद का *'कः स्विदेकाकी चरति।'* मंत्र ही है। निश्चय ही इनका स्रोत वैदिक ब्रह्मोद्य या ब्रह्मविषयक प्रश्नोत्तरमयी चर्चाएं थीं। दूसरा विभाग लोक-साहित्य-धारा का है, जैसे कि *'किं स्वित् सुप्तं न निमिषति'* (कौन सोता हुआ पलक नहीं मारता?) और उत्तर में *'मत्स्यः सुप्तो न निमिषति* (मछली सोती हुई पलक नहीं मारती), यह लोक-साहित्य से लिया गया है।"[1]

"प्रश्नों की बुझौवल का यक्ष-पूजा से घनिष्ठ संबंध था। आज भी लोक में यक्ष या देवता किसी के सिर पर आता है तो टपाटप प्रश्न पूछने की प्रथा है। यहां यह भी उल्लेख-योग्य है कि कुरु जनपद के लोक-साहित्य की छानबीन करते हुए इसी शैली के कुछ लोक गीत मिले हैं, जिन्हें मल्होर या गाहा कहते हैं, जैसे–

प्रश्न–ऐ जी, कौन जगत में एक है?

---

1. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

बीरा कौन जगत में दोय?
कौन जगत में जागता ?
ऐ जी, कोई कौन रह्या पड़ा सोय?
उत्तर–ऐ जी, राम जगत में एक है,
बीरा चंदा सूरज दोय।
पाप जगत में जागता,
ऐ जी, कोई धरम रह्या पड़ा सोय।

इस प्रश्नोत्तरी के बोल प्राचीन वैदिक गाथाओं के समकक्ष हैं–

कः स्विदेकाकी चरति क उस्विज्जायते पुनः।

फिर इसका उत्तर है–

सूर्य एकाकी चरति चन्दमा जायते पुनः।

कौन जगत में जागता है? इसकी प्रतिध्वनि अथर्ववेद के 'कः सुप्तेषु जागर्ति' वाक्य में पायी जाती है। महाभारत में यक्ष पूछने वाला है और धर्म के प्रतिनिधि युधिष्ठिर उत्तर देने वाले हैं। लेकिन वस्तुतः लोग पूछते हैं और यक्ष उत्तर देता है, यही परंपरा थी।"[1]

धर्म ही बगुला बनकर युधिष्ठिर से प्रश्न करता है, यह कथा–कल्पना है। युधिष्ठिर को धर्मराज का पुत्र सिद्ध करने की कथा आदि पर्व में ही गढ़ी गयी है। उसी कल्पना की पुष्टि यहां की गयी है। यक्ष के वर देने से पांडवों को एक वर्ष कोई नहीं पहचानेगा, यह भी कल्पना ही है और झूठी धारणा है। हमें सावधान होकर सार लेना चाहिए। प्रश्नोत्तर मार्मिक हैं, उनसे लाभ लेना चाहिए, यही मतलब है। कुछ प्रश्न शिथिल हैं इसलिए उत्तर भी शिथिल हैं। विज्ञ पाठक स्वयं नीर–क्षीर का विवेक करें।

---

1. **भारत सावित्री, पृष्ठ – ।**

सदगुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

चौथा : विराट पर्व

. पांचों पांडवों और द्रौपदी के अज्ञातवास के कार्य

पांडवों के बारह वर्ष वनवास करते बीत गये। अब उनको एक वर्ष अज्ञातवास करना है। इसलिए उन्होंने पुरोहित धौम्य से कहा कि आप रसोइए और नौकरों को लेकर द्रुपद के पास पांचाल चले जायं और वहीं रहें। अग्निहोत्र का काम चालू रखें। इंद्रसेन आदि द्वारका चले जायं। वहां तुम लोग यही कहना कि पांडवों का हमें कुछ भी पता नहीं है। वे सब द्वैतवन से हमें छोड़कर पता नहीं कहां चले गये।

द्रौपदी सहित पांचों पांडवों ने एकांत में बैठकर विचार किया कि अज्ञात-वास कहां किया जाय। अर्जुन ने कहा—कुरुदेश के चारों ओर बहुत-से सुंदर जनपद हैं जहां बहुत अन्न होता है। जैसे—पांचाल, चेदि, मत्स्य, शूरसेन, पटच्चर, दशार्ण, नवराष्ट्र, मल्ल, शाल्व, युगंधर, विशाल कुंतिराष्ट्र, सौराष्ट्र और अवन्ती। राजन! इनमें कौन राष्ट्र आप पसन्द करेंगे।?

युधिष्ठिर ने कहा—मुझे मत्स्य देश विराट नगर[1] अधिक पसंद है। वहां के

---

1. **"यह विराटनगर उस समय मरुभूमि के उत्तरी छोर पर था, जो आज-कल वैराट है। यह अवश्य प्राचीन काल में महत्त्वपूर्ण स्थान था और शूरसेन (मथुरा) जनपद से राजस्थान में घुसने के लिए यातायात पथ पर महत्त्वपूर्ण नाका माना जाता था। कालांतर में मौर्य सम्राट अशोक ने यहीं पर अपना एक शिलालेख उत्कीर्ण कराया (भारत सावित्री, पृष्ठ)।"**

   "मत्स्य या विराट—धौलपुर के पश्चिम में स्थित देश। कहा जाता है कि पांडव लोग दशार्ण के उत्तर में शौरसेन तथा रोहितक के भूभाग से होते हुए यमुना के तट इस प्रदेश में आये थे। विराट देश की राजधानी संभवतः वैराट ही थी जो आज-कल जयपुर से चालीस ( ) मील उत्तर में बैरात के नाम से विख्यात है (आप्टे कृत संस्कृत हिंदी कोश, पृष्ठ)।"

राजा वृद्ध, उदार, धर्मात्मा और प्रिय हैं। उनके यहां हम लोग अज्ञात वास करें। मैं पासा खेलने की कला जानता हूं। यह खेल मुझे प्रिय है। अतएव मैं कंक नामक ब्राह्मण बनकर विराटराज की सभा में पासे के खेल से उनका मनोरंजन करूंगा। भीम ने कहा–मैं वल्लभ नाम रखकर विराट–नरेश का रसोइया बनूंगा और मल्लयुद्ध की पहलवानी, बैल तथा हाथी को वश करने का भी काम करूंगा। अर्जुन ने कहा–मैं बृहन्नला नाम रखकर राजा के यहां हिजड़ा बनूंगा और स्त्री–वेष में रहकर राज–रानियों को गीत, वाद्य तथा नृत्य की शिक्षा दूंगा। नकुल ने कहा–मैं अपना नाम ग्रंथिक रखकर राजा के यहां रहकर घोड़ों की रक्षा का काम करूंगा। सहदेव ने कहा–मैं अपना नाम अरिष्टनेमि रखकर राजा की गायों का पालक बनूंगा। द्रौपदी ने कहा–मैं अपना नाम सैरंध्री रखकर राजा की रानी का शृंगार करूंगी। उनकी सेवा में रहूंगी (विराट पर्व, अध्याय –)।

. राजदरबार में रहने के लिए धौम्य का उपदेश

पांडवों के पुरोहित धौम्य ने कहा–पांडवो ! तुम लोग द्रौपदी की रक्षा रखना। तुम लोग लोकव्यवहार की सभी बातें जानते हो; फिर भी सुहृद का कर्तव्य है कि वे स्नेहवश हित की बात बतावें। इसलिए मैं तुम लोगों को युक्ति–युक्त बातें बताऊंगा, उन्हें ध्यान से सुनो। मैं यह बताने जा रहा हूं कि राजा के यहां रहकर कैसा बरताव करना चाहिए। ध्यान रहे, विवेकी पुरुष के लिए भी राजमहल में रहना अत्यंत कठिन है। वहां तुम्हें अपने लिए मिले हुए सम्मान या अपमान पर न ध्यान देकर एक वर्ष गुप्त रूप से काटना है।

राजा से मिलना हो तो पहले उनके द्वारपाल से मिलकर उन्हें सूचना देना चाहिए और आज्ञा लेकर उनके बुलाने पर उनके पास जाना चाहिए। राजाओं पर पूर्ण विश्वास कभी न करे। जिस पर कोई दूसरा बैठने वाला न हो वही आसन अपने बैठने के लिए समझे। 'मैं राजा का प्रिय हूं' ऐसा मानकर राजा की सवारी, पलंग, पादुका, हाथी तथा रथ पर न चढ़े। बिना पूछे राजा को कर्तव्य–उपदेश न करे। मौन होकर राजा की सेवा करे और समय–समय पर उसकी प्रशंसा करे। झूठ न बोले। राजाओं की रानियों से मेलजोल न करे। जो लोग रनिवास में आते–जाते हों, राजा जिनसे द्वेष रखता हो, अथवा, जो राजा का अहित चाहने वाला हो, ऐसे लोगों से मित्रता न करे। कितना ही छोटा काम हो राजा को बताकर करे।

यदि बैठने के लिए राजदरबार में ऊंचा आसन मिलता हो तो भी जब तक राजा आज्ञा न दे तब तक उस पर न बैठे। राजा लोग मर्यादा का उल्लंघन करने

वाले भाई, पुत्र और पौत्र का भी आदर नहीं करते। राजा के अत्यंत निकट न रहे और उसकी कभी अवहेलना न करे। जो व्यक्ति राजा के साथ कपट और मिथ्या व्यवहार करता है, वह निश्चय है कि राजा द्वारा एक दिन मारा जाता है। राजा की आज्ञा में तत्पर रहे। लापरवाही, घमंड और क्रोध न आने दे। जहां कर्तव्य-अकर्तव्य के निर्णय की बात आवे वहां हितकर और मीठे वचन कहे। यदि दोनों एक साथ कहते न बने तो हितकर बात कहे। सभी बातों में राजा के अनुकूल रहे। कथा-वार्ता के समय भी राजा के अनुकूल ही बात कहे।

चाहे तुम जितने योग्य हो, परंतु यह न मानो कि मैं राजा का प्रिय व्यक्ति हूं। जो वस्तु राजा को प्रिय न हो उसका उपयोग न करे। राजा के दाहिने या बायें बैठे। उसके पीछे अंगरक्षक का स्थान है। राजा के सामने किसी के लिए ऊंचा आसन लगाना अनुचित है। यदि राजा के सामने पुरस्कार वितरण या वेतन वितरण होता हो, तो वहां बिना बुलाये न जाय। क्योंकि ऐसी उद्दंडता दरिद्र को भी पसंद नहीं होती, फिर राजा को कैसे पसंद होगी। राजाओं की किसी झूठी बात को यदि जानता हो, तो उसे किसी के सामने प्रकट न करे। राजा के सामने अपना पांडित्य न प्रकाशित करे। मैं शूरवीर या बुद्धिमान हूं, ऐसा अहंकार न करे। जो सदा राजा को प्रिय लगने वाला काम करता है, वही राजा का प्रियपात्र तथा ऐश्वर्य का भोक्ता होता है। जिसका क्रोध क्षणमात्र में बड़ा भारी संकट लाने वाला है और जिसकी प्रसन्नता ऐश्वर्य देने वाली है, उस राजा को कौन बुद्धिमान असंतुष्ट करेगा?

राजा के सामने अपने हाथ, घुटनों और ओठ को न हिलावे। राजा के सामने धीरे-धीरे बोले, अपान-वायु धीरे से छोड़े जिससे दूसरे को पता न चले। दूसरे की हास्यास्पद बात पर अधिक हर्ष न प्रकट करे, जोर से न हंसे। जड़ होकर भी न रहे। प्रसन्नता पर मीठी मुसकान ही ठीक है। जो अनुकूलता में हर्षित नहीं होता, प्रतिकूलता में व्यथित नहीं होता और सदैव मोहशून्य होकर विवेक से व्यवहार करता है, वही राजा के यहां सुख से रह सकता है। जो मंत्री राजा, राजकुमार एवं राजकुमारी की प्रशंसा करता रहता है, वह राजा के यहां अधिक दिन टिक सकता है।

कोई मंत्री पहले राजा का प्रिय रहा हो, पीछे बिना हेतु उसे दण्ड भोगना पड़ा हो, ऐसी स्थिति में भी जो राजा की निंदा नहीं करता, वह अपने पूर्व ऐश्वर्य को पुनः प्राप्त कर लेता है। राजा के सामने और उसके पीठ पीछे भी उसके सद्‌गुणों की चर्चा करे, दुर्गुणों की नहीं। जो मंत्री बलपूर्वक राजा को अपने अधीन करना चाहता है वह अधिक दिन तक अपने पद पर नहीं टिक सकता। उसके प्राणों पर भी संकट आ सकता है। अपने स्वार्थ साधने के लिए दूसरे को

राजा से न मिलावे। उचित समय और देश देखकर राजा की विशेषता प्रकट करे। उत्साही, बुद्धि–बल सम्पन्न, शूरवीर, सत्यवादी, विनम्र और जितेंद्रिय व्यक्ति छाया की तरह राजा का अनुसरण करके राजदरबार में स्थायित्व पा सकता है। मेरे लिए क्या आज्ञा है–कहकर जो सेवा–कार्य मांगता है वही राजभवन में टिक सकता है। जो धन और स्त्री की रक्षा और शत्रु–विजय–राजा के आंतरिक और बाह्य दोनों कार्यों के लिए अग्रणी रहता है और इसमें भयभीत नहीं होता, वही राजदरबार में टिक सकता है।

जो घर–परिवार का मोह छोड़कर बिना कष्ट माने राजदरबार में सेवा परायण रहता है, वही वहां टिक सकता है। राजा के समान पोशाक न पहने। उसके बहुत निकट न रहे। उसके सामने ऊंचे आसन पर न बैठे। राजा की गुप्त बातें कहीं न प्रकट करे। राजा द्वारा किसी काम पर नियुक्त होने पर किसी से घूस न ले, अन्यथा उसे एक दिन दंड या वध का भागी होना पड़ेगा। राजा के दिये हुए सवारी, आभूषण, वस्त्र आदि उपयोग में लावे, इससे राजा प्रसन्न होता है। इस प्रकार सावधानी से रहकर राजा की सेवा करे।

युधिष्ठिर ने कहा–मैं आपका आभारी हूं। माता कुंती और बुद्धिमान विदुर के अतिरिक्त आप जैसा उपदेश देने वाला मुझे कोई नहीं मिला। द्रौपदी को आगे करके पांचों पांडव विराट नगर की ओर चले (अध्याय)।

. विराट–नरेश के यहां पांचों पांडवों की व्यवस्था

विराट नगर के पहले घोर जंगल में शमी का एक विशाल वृक्ष था और श्मशान के निकट था। उसी पर चढ़कर उसकी खोल में पांडवों ने अपने अस्त्र–शस्त्र रख दिये। वहीं एक स्त्री की लाश मिल गयी। उसे उन लोगों ने उस वृक्ष में लटका दिया, जिससे लोग उस वृक्ष को दूर से त्याग दें। पांडवों ने आसपास के गाय चराने वाले ग्वालों से कह दिया कि यह हमारी माता है जो एक सौ अस्सी ( ) वर्ष की थी, वह मर गयी है। ऐसी हमारे पूर्वजों की रस्म है, इसलिए हम अपनी माता की लाश इसमें लटका दिये हैं।

इसके बाद पांडव और द्रौपदी अलग–अलग होकर चले। युधिष्ठिर विराट–नरेश की सभा में पहुंचे और उन्होंने राजा से कहा–मैं ब्राह्मण हूं। मेरा सब कुछ नष्ट हो गया है। मैं आपके पास जीवन निर्वाह के लिए आया हूं। मेरा नाम कंक है। मैं पासा खेलने में निपुण हूं। मैं पहले युधिष्ठिर के पास रहता था। भीम ने राज–सभा में जाकर विराटनरेश से कहा–मैं रसोइया हूं। मेरा नाम वल्लभ है।

मैं बहुत अच्छा भोजन बनाता हूं। आप मुझे अपनी सेवा में रख लें। मैं कुश्ती लड़ता हूं, बैल और सिंह को भी पछाड़ता हूं।

द्रौपदी मलिन वेष बनाये नगर में इधर-उधर भटक रही थी। बहुत-सी स्त्रियां उसके पास आ गयीं और उससे पूछने लगीं कि तुम कौन हो, क्या करना चाहती हो? द्रौपदी ने कहा–मैं सैरंध्री हूं। मैं किसी के यहां काम करना चाहती हूं। रानी सुदेष्णा ने महल पर से द्रौपदी को देखा और उसे अपने पास बुलवा लिया और उससे उसका परिचय पूछा। द्रौपदी ने कहा–मैं सैरंध्री हूं। जो मुझे अपने यहां सेवा के लिए रखना चाहे मैं रह सकती हूं। मैं बाल का शृंगार करना जानती हूं। उबटन एवं अंगराग अच्छा पीसती हूं। मैं मल्लिका, उत्पल, कमल और चंपा आदि फूलों की अच्छी माला बनाती हूं। मैं पहले श्रीकृष्ण की रानी सत्यभामा तथा पांडवों की पत्नी द्रौपदी की सेवा कर चुकी हूं। सैरंध्री की रूप-शोभा देखकर रानी चकित रह गयी और उसके मन में शंका हुई कि इस सुंदरी को महल में रखने से कोई झंझट न उपस्थित हो जाय। द्रौपदी ने रानी के मन की शंका मिटाते हुए कहा–मुझे दूसरा पुरुष नहीं पा सकता। मेरे पांच गंधर्व पति हैं। जो मुझे जूठा भोजन नहीं देता तथा अपने पैर मुझसे नहीं धुलवाता, उसके इस उत्तम व्यवहार से मेरे गंधर्व पति प्रसन्न रहते हैं। यदि कोई अन्य पुरुष मुझे पाना चाहेगा, तो उसी रात उसका अंत हो जायगा। रानी ने उसे स्वीकृति दे दी।

सहदेव राजा की गोशाला के पास खड़े हो गये। राजा ने परिचय पूछा। सहदेव ने कहा–मैं वैश्य हूं। मेरा नाम अरिष्टनेमि है। मैं पांडवों की गायों का सेवक था। पांडव कहां हैं, मैं नहीं जानता। आपके यहां अपने जीवन-निर्वाह के लिए आया हूं। मैं गायों की गणना तथा देखभाल करना जानता हूं। राजा ने सहदेव को रख लिया।

अर्जुन ने अपना स्त्री का वेष बना रखा था। उन्होंने स्वयं को हिजड़ा बताया और अपना नाम बृहन्नला। आगे कहा–मैं वेणी रचना करना, कुंडल बनाना, हार बनाना, ओढ़ने की चादर बनाना, स्नान कराना, दर्पण की सफाई करना; नपुंसकों, बालकों तथा साधारण लोगों में संगीत, नृत्य की शिक्षा देने में निपुण हूं। राजा ने बृहन्नला को स्वीकार लिया और पुत्री उत्तरा तथा अन्य सेविकाओं को नाचने, गाने, बजाने आदि की शिक्षा देने के लिए नियुक्त कर लिया। अंत में नकुल की पारी आयी। वे राजा को अपना नाम ग्रंथिक बताये और कहा कि मैं घोड़ों की देख-भाल का काम जानता हूं। राजा ने उन्हें भी रख लिया (अध्याय -)।

. ब्रह्ममहोत्सव में भीम द्वारा मल्ल जीमूत की पराजय

पांडवों को राजा विराट के यहां रहते चार महीने बीत गये। मत्स्य देश में ब्रह्ममहोत्सव था। यक्ष को ब्रह्म कहते थे। वस्तुतः यह यक्ष-पूजा थी।[1] इसमें बड़ा मेला लगता था। उसमें पहलवानों का भी जमाव था। उनमें जीमूत नाम का सर्वोच्च पहलवान था। उसने ललकारा कि कोई मुझसे लड़ ले, किन्तु कोई सामने न आया। तब विराट–नरेश ने वल्लभ (भीम) से लड़ने के लिए कहा। भीम डरते थे कि मुझे कोई पहचान न ले, इसलिए जीमूत से लड़ना नहीं चाहते थे, परन्तु राजा के कहने से उन्होंने कमर कस ली और जीमूत से भिड़ गये। आपस में उठा–पटक होते–होते भीम ने उसे दे मारा। राजा ने भीम पर प्रसन्न होकर उनको पुरस्कार दिया। राजा कभी–कभी भीम से बाघ, सिंह तथा हाथियों से भी भिड़ंत करवाता था। अधिकतर अंतःपुर की स्त्रियों के विनोद के लिए भीम की कुश्ती सिंहों से करायी जाती थी (अध्याय)।

. कीचक का द्रौपदी पर मोहित होना और भीम द्वारा उसका वध

विराट नरेश का सेनापति कीचक नाम का था। यह नरेश का साला भी था। इसने एक दिन राजभवन में द्रौपदी को देखा और मोहित हो गया। वह अपनी बहिन रानी सुदेष्णा के पास जाकर द्रौपदी का परिचय पूछा और अपने मोह की बात कही। सुदेष्णा की सम्मति लेकर कीचक द्रौपदी के पास जाकर मोह–माया की बात करने लगा। द्रौपदी ने उसे फटकारा। उसने कहा–मैं किसी की पत्नी हूं। हर पुरुष को अपनी ही स्त्री प्रिय होना चाहिए। तुम मेरे लिए जो यह घृणित विचार रखते हो, उसे छोड़ दो।

कीचक ने द्रौपदी को प्रलोभन देना शुरू किया। वह तो मोह में मतवाला था। द्रौपदी ने कहा–सूतपुत्र! तू मोह में न पड़। पांच भयंकर गंधर्व मेरे रक्षक हैं। तू अपनी जान मत गंवा।

कीचक द्रौपदी को अपने वश में न कर सका, तो पुनः अपनी बहिन सुदेष्णा के पास गया और उससे अनुनय–विनय करने लगा कि किसी प्रकार इस सैरंध्री को मेरे वश में कराओ। सुदेष्णा ने कहा–सैरंध्री बड़ी सदाचारिणी है। यह मेरी शरण में रहती है। मैंने इसे अभय–दान दे रखा है। तुम इसका पीछा छोड़ दो।

---

1. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

. कीचक का द्रौपदी पर मोहित होना और भीम द्वारा उसका वध

कीचक के बारंबार आग्रह करने पर सुदेष्णा ने कहा–तुम अपने घर में भोज का आयोजन करो। मैं तुम्हारे भोज में से सुरा ले आने के बहाने सैरंध्री को तुम्हारे भोज में भेजूंगी। उस समय तुम उसे एकांत में समझाने की चेष्टा करना। हो सकता है वह तुम्हें स्वीकार ले। कीचक अपने घर में भोज रचा। सुदेष्णा ने द्रौपदी को उसके भोजन की जगह से सुरा लाने की आज्ञा दी। द्रौपदी ने रानी से बताया कि कीचक का मन मैला है। वहां मुझे न भेजिए। परन्तु रानी के विशेष आग्रह से द्रौपदी को उसके भोज की जगह पर जाना पड़ा।

द्रौपदी जब कीचक के भवन में पहुंची, वह पहले से तैयार बैठा था। उसने द्रौपदी को प्रलोभन देना शुरू किया। द्रौपदी ने फटकारा। कीचक ने द्रौपदी का हाथ पकड़ा। द्रौपदी ने उसे झिटक दिया। कीचक ने द्रौपदी की चादर पकड़ ली, परन्तु द्रौपदी ने उसे जोर से धक्का दिया, तो कीचक गिर पड़ा, और द्रौपदी ने राजसभा में जाकर शरण ली। वहां राजा थे और युधिष्ठिर भी थे। द्रौपदी ने अपनी रक्षा के लिए नरेश के सामने निवेदन किया। स्थिति जान लेने पर सभासदों ने द्रौपदी की प्रशंसा की और कीचक को बहुत धिक्कारा।

द्रौपदी इसके बाद जाकर रानी के पास रोने लगी। सुदेष्णा को सब बात का पता चल गया। उसे भी कीचक से घृणा हुई। भीम अपने कक्ष में सो रहे थे। द्रौपदी ने वहां जाकर अपनी व्यथा कही। उसने भीम से कहा–कौरव-सभा में दुःशासन ने मेरा अपमान किया, वनवास में जयद्रथ ने मेरा अपमान किया और अब विराट-नरेश के भवन में कीचक ने मेरा अपमान किया। तुम्हारे बड़े भाई की बुरी आदत जुआबाजी के परिणाम में यह सब मेरा अपमान हो रहा है। जुए की आदत ने युधिष्ठिर को राजसिंहासन से नीचे गिरा दिया। वे आज विराट-नरेश के सेवक बनकर परतंत्रता के नरक में पड़े हैं।

भीम ने कहा–द्रौपदी! तुम आगामी रात के शुरू में कीचक से मिलकर कहो कि वह नृत्यशाला में आ जाय। नृत्यशाला में दिन में लड़कियां नाचती हैं और रात होने के पहले वे अपने घर चली जाती हैं। रात में नृत्यशाला सूनी और अंधेरी रहती है। वहां एक पलंग है। मैं वहां पहले जाकर उस पर लेट जाऊंगा। कीचक तुमसे मिलने के उत्साह में वहां आयेगा और मैं उसे ठिकाने लगा दूंगा।

द्रौपदी ने अगली संध्या को कीचक से मिलकर उसे नृत्यशाला में आने के लिए निमंत्रित कर दिया। कीचक खूब प्रसन्न हुआ। नियत समय में वह अंधेरे में

नृत्यगृह में गया, भीमसेन चादर ओढ़े लेटे थे और कीचक की प्रतीक्षा में थे। कीचक अंधेरे में टटोलते हुए भीम के पास पहुंचा और उसे सैरंध्री समझकर उसके अंग टटोलने लगा और काम–मोहित होकर उससे प्रिय बात कहने लगा। भीम ने धीरे से कहा–तुम स्पर्श के बड़े ज्ञाता हो। तुम्हें ऐसा कोमल स्पर्श कभी नहीं मिला होगा।

भीम ने उछलकर कीचक को धर दबोचा। कीचक भी बलवान था। दोनों में गुत्थमगुत्थी हुई। अंततः भीम ने कीचक को दे मारा और उसके सिर, हाथ, पैर आदि को इतना तोड़ दिया कि वह मांस का लोथड़ा बन गया।

कीचक के साथियों ने उसकी मृत्यु सुनी। सब दौड़े आये। उसकी लाश को अर्थी पर रखा। उन लोगों ने कहा कि सैरंध्री के कारण ही कीचक मारा गया है, तो इसे भी कीचक की लाश के साथ जला दिया जाय। अतएव द्रौपदी को भी कीचक की लाश के साथ अर्थी में बांधकर उसे श्मशान की तरफ जलाने के लिए ले चले।

भीम ने एक पेड़ पर चढ़कर देखा कि द्रौपदी को वहां ले जा रहे हैं। भीम चुपके से जाकर श्मशान में पहुंच गये और एक पेड़ उखाड़कर उसी से कीचकों को मारना शुरू किया, सारे कीचक के साथी भाग खड़े हुए और भीम ने द्रौपदी को छुड़ाकर उन्हें नगर की तरफ भेज दिया और स्वयं अपने कार्य–स्थल पाकशाला में चले गये।

द्रौपदी रानी के पास आयी। रानी ने कहा–सैरंध्री! तू अब जहां चाहे चली जा। तुझ सुंदरी के कारण राजभवन में उपद्रव होता है। तेरे गंधर्व बड़े खतरनाक हैं। उनसे राजा को भय हो गया है। द्रौपदी ने कहा–महारानी! मुझे तेरह दिन तक और अपने पास रखने की कृपा करें। उसके बाद मैं स्वयं चली जाऊंगी। रानी सुदेष्णा ने कहा–सैरंध्री! तुम्हारा जब तक मन कहे रहो, मेरे पति–पुत्रों आदि की रक्षा करो। इसके लिए मैं तुम्हारी शरण में हूं (अध्याय –)।

. गोहरण तथा उसकी मुक्ति और तेरह वर्ष की अवधि की समाप्ति

इधर दुर्योधन अपने गुप्तचरों से पांडवों के अज्ञातवास के समय उनका पता लगा लेने का प्रयत्न करता रहा, किन्तु सफल न हुआ। कीचक के मारे जाने

की बात सुनकर कौरवों को आनंद हुआ। दुर्योधन की सभा में त्रिगर्त देश[1] का राजा सुशर्मा बैठा था। उसने दुर्योधन से कहा–विराट–नरेश के सेनापति कीचक ने हम पर अनेक बार हमला करके लूटा है। अब वह किसी द्वारा मारा गया है। यह सुनकर हम प्रसन्न हैं। इस समय अवसर है, हम क्यों न विराट–नरेश पर हमला बोलकर उनकी गायों को हांक लावें?

उपर्युक्त बात दुर्योधन, कर्ण आदि सबको जंची। दुर्योधन ने कहा–सुशर्मा अपनी सेना लेकर विराट पर हमला करें। उसके दूसरे दिन हम भी हमला बोल देंगे। त्रिगर्त–सैनिक विराट–नरेश की गायों की जगह पर जायं और ग्वालों के पास पहुंचकर गायों पर कब्जा कर लें।

अपनी त्रिगर्त–सेना लेकर सुशर्मा ने विराट–नरेश की गायों पर हमला किया और उनको अपने अधिकार में कर लिया। ग्वालों ने जाकर विराट–नरेश के राजदरबार में गोहार मचाया। राजा तुरन्त अपनी सेना लेकर सुशर्मा से लड़ने के लिए चल पड़े। विराट–नरेश ने कंक, वल्लभ, ग्रंथिक और तंतिपाल (अरिष्टनेमि) को भी रथ की सवारी देकर लड़ने के लिए साथ में ले लिया। त्रिगर्त–नरेश सुशर्मा और विराट–नरेश में घोर युद्ध हुआ। सुशर्मा ने विराट–नरेश को पकड़कर बंदी बना लिया, और अपने रथ पर बैठाकर भाग निकला। भीम ने सुशर्मा को परास्त कर विराट–नरेश को छुड़ा लिया और सुशर्मा को बंदी बनाकर युधिष्ठिर के पास ले आये। युधिष्ठिर ने दया कर उसे छुड़ा दिया। वह भाग गया। राजा विराट ने पांडवों का सत्कार किया और विराट नगर में राजा की विजय घोषणा हुई।

पीछे पुनः संकट आया। दुर्योधन का कौरव दल आकर विराट–नरेश पर टूट पड़ा। ग्वाला आकर राजकुमार उत्तर कुमार के पास गोहार मचाया। उत्तर कुमार का कुशल सारथि पहले मारा जा चुका था, इसलिए उन्होंने हड़बड़ाकर कहा–यदि मेरा कोई सारथि बन सके तो अभी युद्ध में जाकर गायों को कौरवों से छुड़ा लूंगा। अर्जुन ने द्रौपदी से कहा–तुम राजकुमार से कह दो कि बृहन्नला कुशल सारथि है। यह अर्जुन का सारथि रह चुका है। इसको अपना सारथि बना लीजिए। द्रौपदी ने राजकुमार से कहा। राजकुमार ने अपनी बहिन उत्तरा से कहा कि बृहन्नला को मेरा सारथि बनने के लिए कहो। उसने कहा। बृहन्नला यही

---

1. **त्रिगर्त प्राचीन काल का एक अत्यंत जलहीन मरु प्रदेश। यह सतलज का पूर्ववर्ती मरुस्थल था। सरस्वती और सतलज का मध्यवर्ती भाग भी इसमें सम्मिलित था। उत्तर में लुधियाना और पटियाला है तथा मरुस्थल का कुछ भाग दक्षिण में है। (शिवराम आप्टे, संस्कृत हिंदी कोश, पृष्ठ)।**

चाहती ही थी, क्योंकि यह तो अर्जुन है और तेरह वर्ष की अवधि समाप्त भी हो गयी है। अब प्रकट होने में भी भय नहीं है। बृहन्नला तैयार हो गयी। उत्तरा की सखियों तथा अन्य राजकुमारियों ने कहा–बृहन्नले! तुम युद्ध में जीतकर भीष्म, द्रोण आदि प्रमुख कौरवों के महीन, कोमल और सुंदर वस्त्र हमारी गुड़ियों के लिए ले आना। बृहन्नला ने कहा–यदि उत्तर राजकुमार कौरवों को परास्त कर देंगे, तो मैं उनके सुंदर वस्त्र ले आऊंगी।

बृहन्नला उत्तर कुमार का रथ हांककर युद्ध क्षेत्र में ले गयी। उत्तर कुमार कौरवों का दल देखकर घबरा गया और कायरता की बात करने लगा। इतना ही नहीं, रथ से कूदकर भाग निकला। बृहन्नला उसे पकड़ने दौड़ी। उसकी साड़ी और चोटी फहराते तथा हिलते देखकर कितने ही सैनिक हंसने लगे कि युद्ध क्षेत्र में ये जूड़ा और साड़ी वाली स्त्री कैसे? बृहन्नला (अर्जुन) ने उत्तर कुमार को समझा–बुझाकर पुनः रथ पर चढ़ाया।

अर्जुन ने उत्तर कुमार को शमी वृक्ष के पास ले जाकर कहा कि तुम इस पेड़ पर चढ़ जाओ और वहां मेरे शस्त्र बांधकर रखे हैं, उन्हें उतारो। उत्तर कुमार ने उतारा। बृहन्नला ने उत्तर कुमार से बताया कि मैं अर्जुन हूं, कंक युधिष्ठिर हैं, वल्लभ भीम हैं, ग्रंथिक नकुल हैं, तंतिपाल (अरिष्टनेमि) सहदेव हैं। उत्तर ने कहा कि मैंने अर्जुन के दस नाम सुन रखे हैं, यदि तुम उसे बता दो तो मैं विश्वास करूं कि तुम अर्जुन हो। अर्जुन ने कहा कि वे नाम ये हैं–अर्जुन, फाल्गुन, जिष्णु, किरीटी, श्वेतवाहन, बीभत्सु, विजय, कृष्ण, सव्यसाची और धनंजय। उत्तर कुमार के पूछने पर अर्जुन इन नामों की व्याख्या करते हैं जो युद्ध क्षेत्र में अस्वाभाविक है। वस्तुतः अर्जुन को महिमा–मंडित करने के लिए यह भागवतों का प्रयास है। "नर–नारायण की कल्पना विकसित होने पर यह सूची भागवतों द्वारा सजायी गयी ज्ञात होती है (भारत सावित्री, पृष्ठ)।"

उत्तर कुमार सारथि बने और अर्जुन ने रथ पर चढ़कर युद्ध का शंख बजाया। उनका रथ चला। द्रोणाचार्य ने कहा–रथ की जैसी घरघराहट हो रही है, मेघगर्जन जैसी आवाज हो रही है और इस कारण पृथ्वी कांप रही है, इससे लगता है कि यह अर्जुन का रथ है। हमारे शस्त्र चमक नहीं रहे हैं, घोड़े प्रसन्न नहीं हैं, पशु सूर्य की ओर मुख करके बोल रहे हैं, रथों की ध्वजा में कौवे छिप रहे हैं, यह सब अशुभ–सूचक हैं।

दुर्योधन ने कहा–हमारी शर्त है कि पांडव बारह वर्ष वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास करें। यदि अर्जुन आज हमारे सामने युद्ध करने आ रहे हैं तो क्या उनके तेरह वर्ष पूरे हो गये हैं? शायद पूरे नहीं हुए हैं। यह भीष्म पितामह ही

जानें। यह दुविधा की बात है। कई बात सोचो कुछ और परखने पर कुछ अन्य ही ठहरती है। हम लोग मत्स्य देश एवं विराट नगर के उत्तर गोष्ठ की खोज करते हुए यहां आये हैं। हमें विराट-नरेश से ही युद्ध करना है। यदि अर्जुन सामने आते हैं, तो हमारा क्या अपराध है? हम उनसे भी युद्ध करेंगे। हम विराट-नरेश से भी अपने स्वार्थ के लिए युद्ध करने नहीं आये हैं। हम त्रिगर्तों की सहायता के लिए यहां आये हैं। त्रिगर्त-नरेश सुशर्मा ने विराट-नरेश का अत्याचार अनेक प्रकार से बताया। वे बेचारे विराट-नरेश से बहुत सताये गये हैं, इसलिए इनकी सहायता के लिए हमने इनसे कहा कि तुम अपनी सेना लेकर विराट-नरेश के दक्षिण गोष्ठ पर सप्तमी तिथि को दोपहर के बाद पहुंच जाओ और उनकी गायों को अपने अधिकार में करके हांक लो। वैसा उन्होंने किया भी। उस समय यह निश्चय किया गया था कि हम कौरव लोग विराट-नरेश के उत्तर गोष्ठ पर अष्टमी को सूर्योदय होते ही पहुंच जायं और वहां की गायों पर अधिकार कर लें; क्योंकि उस समय विराट-नरेश दक्षिणी गोष्ठ की गायों को सुशर्मा से छुड़ाने के लिए उनके पीछे गये होंगे। हमारे सामने विराट-नरेश हों या अर्जुन हों, हमें युद्ध करना ही है। हमारे श्रेष्ठ वीर भीष्म, द्रोण, कृप, विकर्ण और अश्वत्थामा भ्रांतचित्त होकर क्यों रथ में बैठे हैं?

कर्ण ने दुर्योधन से कहा-राजन! आप द्रोणाचार्य को पीछे कर दें, तब युद्ध की नीति बनाइए। ये पांडवों के पक्षपाती हैं। इसलिए हमें डरा रहे हैं। इनका प्रेम अर्जुन के प्रति अधिक है। ये अर्जुन को आते देखकर उनकी प्रशंसा के गीत गाने लगे। भला, घोड़े की हिनहिनाहट सुनकर उसकी प्रशंसा कौन करेगा? घोड़े बंधे खड़े हों या युद्ध में हों, वे हिनहिनाते ही हैं। इसमें किसी की वीरता का कोई प्रसंग नहीं होता। सदा वायु चलता है, वर्षा होती है, मेघ गरजते हैं। इनमें डरने की क्या आवश्यकता है? इसमें अर्जुन का क्या काम है? वस्तुतः आचार्य का मोह अर्जुन से है और हम लोगों से द्वेष है। "आचार्य जन कारुणिक, ज्ञानवान और पाप तथा हिंसा के विरुद्ध विचार वाले होते हैं- *"आचार्या वै कारुणिकाः प्राज्ञाश्चापापदर्शिनः* (विराट पर्व ,)" इसलिए युद्ध के समय इनकी राय नहीं लेनी चाहिए। सुंदर भवनों, मंदिरों, सभाओं और उद्यानों में विचित्र कथा-वार्ता सुनाना पंडितों की शोभा है। मनुष्यों की भीड़ में आश्चर्यजनक तथा विनोदपूर्ण कार्य करने तथा हवन-तर्पण करने में कर्म-कांडियों की शोभा है। दूसरों के दोष निकालने में, मनुष्यों की दिनचर्या बताने में, यात्रा के लिए मुहूर्त आदि निकालने में, गधों, ऊंटों, बकरों, भेड़ों के गुण-दोष की समीक्षा करने में, गलियों तथा दरवाजों पर मांगलिक कृत्य कराने में,

नये अन्न का इष्ट द्वारा संस्कार कराने में और अन्न में केश–कीट आदि गिर जाने पर उनका दोष बताने में पंडितों की शोभा है। ध्यान रहे, शत्रुओं के गुणों की प्रशंसा करने वाले पंडितों को पीछे करके ही युद्ध की तैयारी करनी चाहिए।

इसके बाद कर्ण अहंकारपूर्ण और आत्मप्रशंसापूर्ण बात करता है। द्रोणाचार्य उसे फटकारते हैं। वे कहते हैं कि हम लोगों ने तेरह वर्षों तक पांडवों को वन में रखकर उनके साथ कपटपूर्ण व्यवहार किया है। अतएव वे हमें क्षमा नहीं करेंगे।

अश्वत्थामा ने कहा–कर्ण! अभी तो न हमने मत्स्य–राज की गायों को जीता है, न मत्स्य देश से बाहर जा सके हैं और न हस्तिनापुर पहुंचे हैं, तुम इतनी व्यर्थ डींग क्यों हांक रहे हो? विद्वान पुरुष लड़ाई जीतकर, अतुल धनराशि प्राप्तकर भी डींग नहीं हांकते। आग बिना कुछ कहे–सुने गरमी देती है, सूर्य मौन रहकर अपनी उष्मा देता है, धरती चुपचाप रहकर सबको धारण करती है। वर्णव्यवस्था में यह कहीं नहीं लिखा है कि क्षत्रिय जुआ खेलकर राज्य प्राप्त करे। जिस दिन तुम लोगों ने कपटपूर्ण जुआबाजी में युधिष्ठिर को हराकर उन्हें दास बनाया था, उस दिन ज्ञानी विदुर ने क्या कहा था, याद है? उन्होंने जुए को कौरवों के विनाश का कारण बताया था। याद रखो, गुरु को पुत्र के बाद शिष्य ही प्रिय होता है, अतएव द्रोणाचार्य का अर्जुन की प्रशंसा करना क्या बुरा है?

अंततः भीष्म, द्रोण आदि ने मिलकर सेना में शांति और एकता बनाये रखने का आदेश दिया और व्यूह बनाकर दुर्योधन की रक्षा करते रहने की योजना बनायी। द्रोणाचार्य बीच में, अश्वत्थामा बायें, कृपाचार्य दाहिने, कर्ण आगे और मैं पीछे रहकर रक्षा करूंगा, इस प्रकार भीष्म ने व्यूह बनाने का निर्देश किया।

अर्जुन ने कौरव–सेना पर हमला करके उनके पंजे से विराट–नरेश की गायों को मुक्त कर लिया। कौरव–सेना हार कर हस्तिनापुर लौट गयी। अर्जुन ने विजय करके तथा विराट–नरेश की गायों को मुक्त कराकर नगर की तरफ जब लौटना हुआ तब पुनः बृहन्नला का रूप धारण कर लिया और सारथि बनकर रथ हांकने लगे।

विराट–नरेश अपने पुत्र उत्तर कुमार के लिए चिंतित थे। जब वे विजयी होकर लौटे, तो राजा प्रसन्न हो गये। उन्होंने संबंधित सैनिकों में पुरस्कार बांटा। विराट–नरेश ने हर्षित होकर कहा–कंक! पासे लाओ, जुआ खेला जाय। युधिष्ठिर ने कहा–ऐसे अवसर पर जुआ खेलना वर्जित है। यदि आपकी बड़ी इच्छा हो तो खेला जा सकता है। विराट–नरेश ने कहा–मुझे जुआ खेलना बहुत पसंद है। इसके सामने स्त्री, गायें, धन फीके हैं। युधिष्ठिर ने कहा–

जुआ भयंकर दोषपूर्ण है। इसे त्याग देना चाहिए। आपने पांडवों को सुना होगा कि जुआ खेल में युधिष्ठिर अपने ऐश्वर्यपूर्ण राष्ट्र, भाई, पत्नी और स्वयं को हारकर दर-दर ठोकरें खाते हैं।

तो भी जुए का खेल आरम्भ हो गया। विराट-नरेश खुश होकर बीच में बोले-आज मेरे बेटे उत्तर कुमार ने कौरवों पर विजय कर ली। युधिष्ठिर ने कहा-बृहन्नला जिसका सारथि हो, उसकी विजय कैसे नहीं होगी? उक्त बातें सुनकर विराट-नरेश जोर से खफा हो गये और बोले-नीच ब्राह्मण! तू मेरे पुत्र के समान एक हिजड़े बृहन्नला की प्रशंसा करता है। तुम्हें बोलने का सऊर नहीं है। तू मेरा अपमान करता है। जो भीष्म, कर्ण, दुर्योधन आदि को परास्त कर दिया उस मेरे पुत्र की प्रशंसा न कर हिजड़े बृहन्नला की प्रशंसा करता है। तू मित्र है, इसलिए क्षमा करता हूं। खबरदार! यदि जीवित रहना है, तो ऐसी बात पुनः मुंह से न निकालना।

युधिष्ठिर ने कहा-राजन! यह विजय बृहन्नला का ही पौरुष है। विराट-नरेश ने कहा-कंक! मैंने अनेक बार तुझे रोका, परन्तु तू अपनी जबान बंद नहीं कर रहा है। सच है, शासन के बिना धर्म का आचरण लोग नहीं कर सकते। इतना कहने के बाद राजा ने क्रोध में उलझकर पासा युधिष्ठिर के मुंह पर जोर से दे मारा, और कहा-फिर कभी ऐसी बात नहीं कहना। युधिष्ठिर की नाक से रक्त बहने लगा। उन्होंने उसे हाथ में ले लिया। द्रौपदी पास में खड़ी थी। उसने जल भरे पात्र में उसे ले लिया।

उत्तर कुमार विजयी होकर आया तो नरेश के पास आने की अनुमति मांगी। युधिष्ठिर ने सेवक के कान में धीरे से कहा कि अभी केवल राजकुमार उत्तर को यहां लाना, बृहन्नला को नहीं। अनुमति पाकर उत्तर कुमार आया, पिता को प्रणाम किया और कंक को भी नमस्कार किया। उत्तर कुमार ने कंक की दशा देखकर राजा से पूछा-किसने इन्हें मारने का पाप किया है? जब राजा से उसकी सच्चाई जानी, तो राजकुमार ने राजा से कहा-पिता जी! आपने बड़ा अपराध किया है। आप इन्हें प्रसन्न कीजिए। विराट-नरेश ने कंक से क्षमा मांगी। कंक ने कहा-मैंने पहले ही आपको क्षमा कर दी है। मुझे क्रोध नहीं है।

विराट-नरेश अपने पुत्र की विजय के उपलक्ष्य में उसकी प्रशंसा करने लगे। उत्तर कुमार ने कहा-मैंने विजय नहीं की, अपितु यह काम देवपुत्र ने किया है। मैं तो भयभीत होकर भाग खड़ा हुआ था। देवपुत्र ने मुझे साहस दिया और उसी ने कौरवों को हराकर गायों को छुड़ाया। विराट-नरेश ने कहा-वह

देवपुत्र कहां हैं? उत्तर कुमार ने कहा–वह देवपुत्र वहीं अंतर्धान हो गया। मेरा विश्वास है कि वह आज–कल में प्रकट हो जायगा।

बृहन्नला ने विराट–नरेश की कन्या उत्तरा को वे राजशाही महीन चमकीले कपड़े दिये जो युद्ध में कौरव महारथियों के शरीर से उतारे गये थे। उत्तरा बहुत प्रसन्न हुई। अर्जुन ने उत्तर कुमार से राय लेकर अपने सहित सभी भाइयों को प्रकट करने का विचारकर लिया। तीसरे दिन पांचों पांडव स्नान कर श्वेत उत्तम वस्त्र धारणकर तथा राजोचित आभूषण पहनकर सभा में गये और राजाओं के लिए रखे हुए सिंहासनों पर विराजमान हुए। राजा विराट ने कुछ विचारकर कहा–कंक! तुम्हें मैंने पासा फेंकने वाला सभासद बनाया था। आज बनठन कर कैसे राजसिंहासन पर बैठ गये? अर्जुन ने मुस्कुराते हुए युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव, द्रौपदी का तथा अपना परिचय दिया। उत्तर कुमार ने अर्जुन की तरफ संकेत कर विराट–नरेश से कहा कि ये ही वह देवपुत्र हैं जिन्होंने कौरवों को हराकर गायों को छुड़ाया है।

राजा विराट ने प्रसन्न होकर अपना राजपाट युधिष्ठिर को समर्पित कर दिया। पश्चात अपनी पुत्री उत्तरा को अर्जुन के साथ ब्याहने का प्रस्ताव रखा। अर्जुन ने राजा विराट से कहा कि मैं आपकी पुत्री उत्तरा को पुत्रवधू के रूप में स्वीकारता हूं। उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ कर दिया जाय। विराट–नरेश ने कहा–मैं स्वयं अपनी पुत्री उत्तरा को आपकी पत्नी के रूप में दे रहा हूं, फिर आप उसे क्यों नहीं स्वीकारते हैं? अर्जुन ने कहा–राजन! मैं एक वर्ष तक आपके रनिवास में रहा हूं। आपकी कन्या को अकेले में और सबके सामने कन्या के रूप में देखता आया हूं। उसने भी मुझे पिता की तरह देखा है। आपकी पुत्री ने मुझे सदैव आचार्य के रूप में ही देखा है। ऐसी स्थिति में मैं यदि उससे अपना विवाह रचाऊंगा तो मनुष्यों को मेरे विषय में आचरण का संदेह होगा। अतएव उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से किया जाय।

अंततः अभिमन्यु और उत्तरा का विवाह रचाया गया। उसमें द्वारका से श्रीकृष्ण दलबल सहित आये, पांचाल–नरेश द्रुपद आदि आये। बाजा–गाजा के साथ विवाह हो गया और सब विदा हो गये (अध्याय –)।

सद्गुरवे नमः

महाभारत मीमांसा

पांचवां : उद्योग पर्व

. श्रीकृष्ण, बलराम, सात्यकि और द्रुपद के भाषण

राजा विराट की सभा में द्रुपद, श्रीकृष्ण, बलराम, सात्यकि, वसुदेव, पांचों पांडव आदि बैठे, और सब मौन होकर कुछ समय तक मनन करते रहे। पश्चात श्रीकृष्ण सभा को संबोधित कर बोलने लगे–उपस्थित महानुभावो! आप लोगों को यह पता ही है कि किस प्रकार शकुनि ने युधिष्ठिर को जुआ में छलकर बनायी हुई शर्त के अनुसार बारह वर्ष का वनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास देकर उन्हें दुख दिया। इन तेरह वर्षों में पांडवों को जो घोर दुख उठाने पड़े वे सब भी सहज समझे जा सकते हैं। अब पांडवों को अपना राज्य मिलना चाहिए। जिससे पांडवों तथा कौरवों दोनों का हित हो, उस पर आप लोग सोचिए। युधिष्ठिर धर्म-विरुद्ध देवताओं का भी राज्य नहीं चाहेंगे। यदि धर्म के अनुकूल है तो वे एक छोटे गांव को पाकर भी संतुष्ट हो सकते हैं।

श्रीकृष्ण ने और आगे कहा–कौरवों ने पांडवों को छल-कपट से दुख में डाला है। जब पांडव बालक थे, तभी उनको मार डालने का प्रयत्न किया गया था। ये बातें भी आप लोग अच्छी तरह से जानते हैं। अतः कौरवों के बढ़े हुए लोभ को और युधिष्ठिर की धर्मपरायणता और दोनों के पारस्परिक संबंध को देखते हुए आप सभासद अलग-अलग विचारकर तथा एक साथ विचारकर कुछ समाधान निकालने का प्रयत्न करें। पांडव अपनी सत्यपरायणता के नाते प्रतिज्ञा के अनुसार अपनी शर्त पालन करके सामने उपस्थित हैं।

यदि कौरव अब भी पांडवों को उनका अधिकार नहीं देते हैं, तो पांडव उनको मारेंगे। कौरव लोग पांडवों के कार्यों में विघ्न डालते हैं। वे केवल उनको दुख देने पर तुले हैं। यह बात निश्चित रूप से जान लेने पर मित्रों तथा संबंधियों को उचित है कि वे उन दुष्ट कौरवों को ऐसा करने से रोकें। यदि कौरव पांडवों

पर युद्ध थोपेंगे, तो वे पीछे नहीं हटेंगे। यदि आप सोचें कि पांडव अल्पसंख्यक होने से युद्ध में सफल नहीं होंगे, परन्तु ये अपने मित्रों की सहायता लेकर विजय के लिए प्रयत्न तो करेंगे ही। युद्ध का होना भी कैसे निश्चय किया जाय; क्योंकि दुर्योधन क्या करना चाहते हैं, यह पता नहीं है। कौरव–पक्ष के विचार जानकर ही हम अपना विचार निर्धारित कर सकते हैं। अतएव मेरा विचार है कि यहां से कोई धर्मशील, पवित्र आत्मा, कुलीन और सावधान पुरुष को दूत बनाकर कौरवों के पास भेजना चाहिए।

श्रीकृष्ण के बड़े भाई बलराम ने श्रीकृष्ण का धर्म और अर्थयुक्त दोनों पक्षों की भलाई के लिए दिये गये मधुर भाषण की भूरि–भूरि प्रशंसा की, तथा अपना भाषण आरम्भ किया। सभासदो! आप लोगों ने श्रीकृष्ण ने जो कुछ कहा उस सारगर्भित विचार को सुना है। इसी में युधिष्ठिर तथा दुर्योधन दोनों की भलाई है। युधिष्ठिर आधा ही राज्य चाहते हैं। आधे राज्य को लेकर दुर्योधन भी सुखी रह सकते हैं। इसी में कौरव, पांडव तथा प्रजा का हित है। यदि दोनों की भलाई के लिए कोई दूत कौरव–सभा में जाता है तो प्रसन्नता का विषय है। जो दूत यहां से जाय वह वहां के सभी गणमान्य पुरुषों के मध्य में खड़ा होकर उनका विनय पूर्वक नमस्कार करे और अपनी बात इस ढंग से कहे कि जिससे कार्य सिद्ध हो। किसी भी स्थिति में कौरवों को उत्तेजित और कुपित नहीं करना चाहिए, क्योंकि उन्होंने बलवान होकर ही पांडवों के राज्य पर अधिकार जमाया है। युधिष्ठिर जुआ को प्रिय मानकर उसमें मोहित हो गये थे। इसीलिए इनके राज्य का अपहरण हुआ है। युधिष्ठिर जुए के खेल में प्रवीण नहीं थे, इसीलिए इन्हें सभी सुहृद–मित्रों ने रोका था, परन्तु इन्होंने किसी की बात नहीं मानी। दूसरी तरफ शकुनि जुए में निपुण था। ऐसा जानते हुए ये उसी के साथ बारंबार खेलते रहे। इन्होंने दुर्योधन और कर्ण को छोड़कर शकुनि को ही जुए के लिए ललकारा था। उस सभा में हजारों जुआरी विद्यमान थे। जिन्हें युधिष्ठिर जीत सकते थे, किंतु उन्हें छोड़कर इन्होंने शकुनि को ही निमंत्रित किया; इसलिए ये हारे। जब युधिष्ठिर बराबर हारते रहे तब भी ये आवेश में होकर खेलते गये। इन्होंने हठ पूर्वक खेल जारी रखा और अपने को हराया। इसमें शकुनि का कोई अपराध नहीं है। इसलिए यहां से जो दूत जाय वह अत्यंत विनम्रतापूर्वक समता से बात करे, जिससे बात सुलझ सके। कौरव और पांडव में युद्ध हो ऐसी चेष्टा न करो और ऐसा कोई कदम न उठाओ। समझौता के लिए ही दुर्योधन को आमंत्रित करो। जो काम मेलमिलाप की भावना से किया जाता है, वही हितकारी होता है। युद्ध में दोनों तरफ से अन्याय और अनीति किया जाता है। याद रहे, अन्याय से किसी प्रयोजन की सफलता नहीं होती है।

. श्रीकृष्ण, बलराम, सात्यकि और द्रुपद के भाषण

मधुवंश के प्रमुख बलराम इस प्रकार कह ही रहे थे कि शिनिवंश के श्रेष्ठ वीर यादव सात्यकि शीघ्र ही उछलकर खड़े हो गये। उन्होंने बलराम जी के भाषण की कड़ी आलोचना करते हुए कहना आरम्भ किया–बलराम जी! मनुष्य का जैसा मन होता है वैसे बोलता है। आपका जैसा मन था वैसा आपने कहा। संसार में कट्टर वीर होते हैं और कायर भी होते हैं। एक ही वृक्ष में एक शाखा फलों से लदी रहती है और दूसरी शाखा में एक भी फल नहीं रहता। इसी प्रकार एक ही कुल में वीर और कायर होते हैं। अपनी ध्वजा में हलका चिह्न रखने वाले मधुकुलतिलक बलराम! मुझे आप पर गुस्सा नहीं है, मुझे तो गुस्सा है सभा में बैठे हुए इन सभासदों पर जो चुपचाप आपकी बात सुन रहे हैं। जो भरी सभा में धर्मराज युधिष्ठिर पर दोषारोपण करे, वह क्या बोलने का अवसर पा सकता है? जुआ खेल में अजानकार युधिष्ठिर को अपने घर में बुलाकर अपने विश्वास के अनुसार उन्हें हराया। यह धर्मपूर्वक विजय कैसे मानी जा सकती है? यदि शकुनि युधिष्ठिर के घर में जाकर उनको जुआ में हरा देते, तो यह धर्मपूर्वक विजय मानी जा सकती थी, किंतु शकुनि ने छलकर उन्हें हराया। युधिष्ठिर ने शर्त के अनुसार तेरह वर्ष वनवास तथा अज्ञात में बिता लिया। अब किसलिए वे कौरवों के आगे अपना मस्तक झुकायें और क्यों प्रणाम करें? वनवास से मुक्त होकर अब वे अपना राज्य पाने के अधिकारी हैं। वे अब शत्रु के सामने दीन बनकर हाथ न फैलायें, भले अन्यायपूर्वक अपना राज्य ले लें।

जब पांडव वनवास से लौटे हैं, तब कौरव कहते हैं कि हमने तो इन्हें अवधि पूरी होने के पहले पहचान लिया है। ऐसी स्थिति में हम कैसे कहें कि कौरव धर्म में निष्ठा रखते हैं और पांडवों के राज्य का अपहरण नहीं करना चाहते हैं। भीष्म, द्रोण और विदुर की विनय-वंदना करने पर भी दुर्योधन पांडव को राज्य नहीं देना चाहेंगे। मैं तो उन्हें युद्ध से ही मना कर युधिष्ठिर के चरणों में झुकाना चाहता हूं। यदि कौरव पांडवों के चरणों में नहीं झुकते हैं, तो उन्हें यमलोक भेजना पड़ेगा। मुझ सात्यकि के प्रहार को सहने की क्षमता कौरवों को नहीं है। पांडवों को राज्य मिलना चाहिए, अन्यथा कौरवों को युद्धभूमि में सदा के लिए सो जाना है।

द्रुपद ने कहा–दुर्योधन मधुर व्यहार से राज्य नहीं देना चाहेगा। धृतराष्ट्र पुत्र मोहवश दुर्योधन का ही पक्ष करेंगे। भीष्म और द्रोणाचार्य दीनतावश और कर्ण तथा शकुनि मूर्खतावश दुर्योधन का समर्थन करेंगे। बलराम जी की बात मुझे नहीं जंचती है। दुर्योधन विनम्रता के व्यवहार से राज्य नहीं लौटायेगा। मेरा विचार है कि हमें अपने मित्र राजाओं के पास शीघ्र संदेश भेजना चाहिए कि वे हमें सैन्य-सहायता दें। यह भी निश्चय है कि दुर्योधन भी राजाओं से सैन्य-

सहायता मांगेगा। राजा लोग जिसको पहले वचन दे देंगे, उसी को सहायता देंगे। इसलिए हम लोगों का निमंत्रण राजाओं के पास पहले जाना चाहिए। राजा शल्य के पास तथा पूर्व समुद्र तटवर्ती भगदत्त के पास संदेश भेजना चाहिए। मेरे पुरोहित विद्वान ब्राह्मण हैं। उन्हें धृतराष्ट्र के पास उचित संदेश देने के लिए भेजना चाहिए। दुर्योधन क्या करना चाहते हैं? भीष्म, धृतराष्ट्र तथा द्रोणाचार्य से क्या बात करना चाहिए?

श्रीकृष्ण ने कहा–राजा द्रुपद ने जो बात कही है, वह पांडवों के लिए हितकर है। हम लोग अच्छी नीति के पक्षधर हैं; अतएव हमें यह कार्य करना चाहिए। हमारा संबंध कौरवों और पांडवों से एक समान है। वे दोनों हमारे साथ यथायोग्य अनुकूल व्यवहार करते हैं। इस समय हम लोग अभिमन्यु और उत्तरा के विवाह के उपलक्ष्य में आये हैं। वह कार्य संपन्न हो गया है। इसलिए हम सब प्रसन्नतापूर्वक अपने–अपने घरों को लौट जायंगे। हे राजा द्रुपद! आप सभी राजाओं में अवस्था तथा शास्त्र–ज्ञान में श्रेष्ठ हैं। हम सब लोग निस्संदेह आपके शिष्य के समान हैं। राजा धृतराष्ट्र भी आपको आदर देते हैं। आचार्य द्रोण और कृप आपके मित्र हैं। अतएव आप ही पांडवों के अनुकूल कौरवों को संदेश भेजिए। जो आप कहेंगे वह हमारा मत रहेगा। यदि दुर्योधन नीति के अनुसार शांति स्वीकार करेगा तो कौरव–पांडवों में भाईचारा बना रहेगा। यदि दुर्योधन शांति न स्वीकारेगा तो आप राजाओं को सैन्य–सहायता के लिए संदेश भेजने के बाद हमें आमंत्रित कीजिएगा। फिर तो कौरवों का विनाश ही होना है।

इसके बाद राजा विराट ने श्रीकृष्ण तथा उनके परिवार का सत्कार करके उन्हें द्वारका के लिए विदा कर दिया। विराट–नरेश तथा पांचाल–नरेश ने मिलकर विभिन्न राजाओं को सैन्य–सहायता के लिए संदेश भेजना शुरू कर दिया। फलतः अनेक राजा अपने सैन्य सहयोग के लिए पांडवों के पास इकट्ठे होने लगे। यह संदेश पाकर दुर्योधन ने भी विभिन्न राजाओं से सैन्य–सहायता के लिए निमंत्रण भेजना शुरू किया। दोनों की सहायता के लिए सेनाएं आने लगीं।

इसके बाद द्रुपद ने युधिष्ठिर से राय लेकर अपने बुद्धिमान तथा वयोवृद्ध पुरोहित को दूत बनाकर कौरवों के पास भेजने की योजना बनायी। इसके लिए उन्हें सम्मति देने लगे। पुरोहित जी! जड़भूतों से प्राणधारी श्रेष्ठ हैं। प्राणधारियों में बुद्धि वाले घोड़े–हाथी आदि श्रेष्ठ हैं। उनसे मनुष्य श्रेष्ठ हैं। मनुष्यों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में विद्वान, विद्वानों में सिद्धांत के जानकार, सिद्धांत के जानकारों में आचरण करने वाले और उनमें ब्रह्मज्ञानी श्रेष्ठ हैं। आप सिद्धांतवेत्ता, शास्त्र ज्ञान तथा अवस्था में श्रेष्ठ हैं। राजा युधिष्ठिर का सदाचार आप जानते हैं और

यह भी आपको विदित है कि राजा धृतराष्ट्र की जानकारी में उनके पुत्रों ने पांडवों को ठगा है। विदुर के बहुत समझाने पर भी धृतराष्ट्र अपने पुत्र-मोह में ही पड़े रहे। दुर्योधन ने युधिष्ठिर को धोखा दिया है। अब वे किसी भी स्थिति में अपनी तरफ से राज्य पांडवों को नहीं देंगे।

पुरोहित! आप धृतराष्ट्र को धर्म की बात समझाकर उनके योद्धाओं का मन अपनी ओर फेर सकते हैं। विदुर जी आपका समर्थन करेंगे और आप भीष्म, द्रोण, कृप आदि के मन में कौरवों से घृणा उत्पन्न करा सकते हैं। जब कौरवों में फूट पड़ जायगी तब वे नये ढंग से सेना-संगठन करने में लगेंगे। इस अंतराल में पांडव अपना सेना-संग्रह और धन-संग्रह कर लेंगे। जब आप वहां रहकर लौटने में देरी करेंगे, तब कौरव निश्चित ही सैन्य-संग्रह अच्छी तरह से नहीं कर सकेंगे। यह भी संभव है कि आपके समझाने से धृतराष्ट्र का मन बदलकर हमारे पक्ष में हो जाय और धर्मानुकूल बात स्वीकार लें। आप धर्मानुकूल बरताव तथा बात करते हुए कौरव कुल के पूर्व नरेशों के उत्तम आचरण उनके सामने रखेंगे तो जो कौरव कुल के कृपालु और वृद्ध पुरुष हैं, उनका मन पसीजेगा। साथ-साथ पांडवों का दुख बतायेंगे, तो कौरवों में जो सज्जन हैं उनका मन दुर्योधन से अवश्य हटेगा। आपको वहां कोई भय नहीं है, क्योंकि आप वृद्ध, वेदज्ञ ब्राह्मण और दूत हैं। अतएव आप पुष्य नक्षत्र से युक्त जय नामक मुहूर्त में प्रस्थान करें। इस प्रकार राजा द्रुपद से प्रशिक्षित होकर पुरोहित ने हस्तिनापुर के लिए अपने शिष्यों के सहित प्रस्थान किया (उद्योग पर्व, अध्याय -)।

. श्रीकृष्ण की दुर्योधन और अर्जुन को सहायता

दुर्योधन और अर्जुन दोनों द्वारका पहुंचे। दोनों ही यादव के संबंधी थे। दोनों को युद्ध में सहायता लेना था। श्रीकृष्ण शयन में थे। दुर्योधन जाकर श्रीकृष्ण के सिरहाने एक कुर्सी पर बैठ गये। इसके बाद अर्जुन पहुंचे। वे श्रीकृष्ण के पैताने बैठ गये। श्रीकृष्ण ने जगकर दोनों का स्वागत किया। दोनों ने युद्ध में सहायता के लिए अपना-अपना प्रस्ताव रखा। दुर्योधन ने हंसते हुए कहा-जो युद्ध होने वाला है, उसमें आप मुझे सहायता दीजिए। मैं ही आपके पास पहले आया हूं। विवेकवान पहले आये हुए प्रार्थी की सहायता करते हैं।

श्रीकृष्ण ने कहा-यह ठीक है कि आप पहले आये हैं, परन्तु मैंने पहले अर्जुन को ही देखा है। दुर्योधन! आप पहले आये और पहले मैंने अर्जुन को देखा है, इसलिए मैं दोनों की सहायता करूंगा। शास्त्र के अनुसार पहले बालक

की इच्छा पूरी करना चाहिए। अर्जुन आप से अवस्था में छोटे हैं, इसलिए पहले उनकी मांग पूरी करना चाहिए। मेरे पास दस करोड़ गोपों की सेना है। एक तरफ वह सेना रहेगी और दूसरी तरफ मैं अकेला रहूंगा, और मैं युद्ध–काल में कोई अस्त्र–शस्त्र नहीं ग्रहण करूंगा। अर्जुन! तुम्हें इन दोनों में से जो चुनना हो, चुन लो। अर्जुन ने शस्त्र–हीन श्रीकृष्ण को चुना और दुर्योधन ने विशाल सेना सहयोग में पायी। वह खूब खुश हो गया और मन–ही–मन समझा कि मैंने श्रीकृष्ण को ठग लिया।

दुर्योधन ने बलराम के पास जाकर उनसे सहायता मांगी। बलराम ने कहा– दुर्योधन! तुम्हें यह सब मालूम ही हो गया होगा कि अभिमन्यु और उत्तरा के विवाह के उपलक्ष्य में हम राजा विराट के यहां विद्यमान थे। वहां मैंने इस संबंध में कहा था कि मेरा संबंध कौरव–पांडव से समान रूप में है। मैंने इस बात को बारंबार दोहराया, परन्तु श्रीकृष्ण को मेरी बात पसन्द नहीं आयी। और मैं श्रीकृष्ण को छोड़कर नहीं रह सकता। अतएव श्रीकृष्ण का विचार जानकर मैंने मन में निश्चय कर लिया है कि मैं इस युद्ध में अर्जुन तथा दुर्योधन दोनों की सहायता नहीं करूंगा। तुम सम्मानित राजा हो; जाओ क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध करो। दुर्योधन ने बलराम की बात सुनकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें हृदय से लगाया और श्रीकृष्ण को ठगा हुआ समझकर युद्ध में अपनी विजय समझकर हर्षित होकर कृतवर्मा के पास गया और उनसे एक अक्षौहिणी सेना सहायता में पायी। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा–आप युद्ध–काल में मेरे रथ के चालक–सारथि बनें यह मेरी अभिलाषा है। श्रीकृष्ण ने इस प्रस्ताव को हर्षित होकर स्वीकार लिया।

मद्र देश का राजा शल्य था, जो पांडवों का सगा मामा था। माद्री के ही पुत्र नकुल और सहदेव थे। पांडवों ने अपना दूत शल्य के पास भेज दिया था कि युद्ध में आप हमारी सहायता करें। शल्य संदेश पाकर पांडवों के सहयोग में चल पड़े, परन्तु दुर्योधन भी चतुर खिलाड़ी था। वह रास्ते ही में शल्य के स्वागत के लिए ऐसा सभा–भवन का पंडाल बनवाया कि वहां पहुंचकर शल्य प्रसन्न हो गये और उसके बनाने वाले शिल्पियों को पुरस्कार देने के लिए उत्सुक हो गये। राजा शल्य ने समझा कि यह स्वागत–समारोह युधिष्ठिर की तरफ से है। किंतु यह तो दुर्योधन की तरफ से था। दुर्योधन वहीं कहीं छिपा बैठा था। वह शल्य मामा के सामने आ गया। शल्य ने दुर्योधन पर प्रसन्न होकर उसे हृदय से लगा लिया और कहा–जो इच्छा हो, मांग लो। दुर्योधन ने कहा–आप मेरी पूरी सेना का अधिनायक बनें। आप जैसे पांडव के मामा हैं, वैसे मेरे भी मामा हैं। राजा शल्य ने दुर्योधन की बात प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार ली। शल्य ने कहा–अच्छा, अब तुम अपने नगर में जाओ। मैं युधिष्ठिर से मिलने जाऊंगा, क्योंकि उनसे

मिलना भी अत्यंत आवश्यक है।

दुर्योधन ने कहा–मामा! आप युधिष्ठिर से मिलकर शीघ्र ही चले आइएगा। हम आपके अधीन हैं। आपने जो मुझे वचन दिया है, उसको याद रखिएगा। शल्य ने कहा–तुम अपने नगर जाओ। मैं शीघ्र तुम्हारे पास आ जाऊंगा। राजा शल्य विराट नगर के उपप्लव्य नामक नगर में जाकर पांडवों से मिले। उनके वनवासजनित दुख पर दया-द्रवित हो बातें कीं। शल्य ने युधिष्ठिर से कहा– दुर्योधन ने तुम्हें बड़ा दुख दिया है। परन्तु तुम उस पर विजय करके अपना राज्य पाओगे। "हे राजन, तुम्हें लोकतंत्र का ज्ञान है, इसलिए हे तात! तुममें लोभजनित बरताव थोड़ा भी नहीं है।"[1]

इसके बाद शल्य ने यह भी बताया कि मैंने दुर्योधन की सेना का अधिनायक बनने के लिए हामी भर दी है। युधिष्ठिर ने कहा–मामा जी! आपने अपनी प्रसन्नता से जो दुर्योधन को वचन दे दिया है, वह अच्छा ही किया है। आपका भला हो; परन्तु मैं आपसे अपना भी कुछ काम कराना चाहता हूं। वह अयोग्य होते हुए मेरे दुख को देखते हुए आपको करना चाहिए। वह यह है कि आप जब अर्जुन और कर्ण के युद्ध में कर्ण के सारथि बनेंगे, तब आपका यही कर्तव्य होगा कि आप कर्ण को बराबर उत्साहहीन करते रहें। यह दावं हमें विजय देगा। हे मामा! यह न करने योग्य कार्य भी मेरे हित को देखते हुए करें। शल्य-मामा ने युधिष्ठिर की यह बात स्वीकार ली। शल्य ने पांडवों पर द्रवित होकर कहा–युधिष्ठिर! महात्मा पुरुष भी समय से दुख पाते हैं। देवता भी दुख उठाते हैं। इंद्र ने पत्नी सहित दुख उठाया है, ऐसा सुना जाता है (अध्याय -)।

मीमांसा

लेखक ने श्रीकृष्ण के मुख से उनके पास दस करोड़ की संख्या में सेना का हवाला दिया है जो अतिशयोक्ति है। आज बढ़ती हुई जनसंख्या के समय में भारत की सेना बीस लाख (, ,) के ही करीब है। वस्तुतः ऋग्वेद ( ) में श्रीकृष्ण की चर्चा आयी है जिसमें उन्हें अंशुमती (यमुना नदी) के किनारे दस हजार सेना के साथ रहने वाला कहा गया है– *'कृष्णो दशभिः सहस्रैः।* उसे अतिशयोक्ति में दस करोड़ बढ़ा दिया गया है।

---

1. **विदितं ते महाराज लोकतंत्रं नराधिप।**
तस्माल्लोभकृतं किंचित् तव तात न विद्यते उद्योग०, अध्याय श्लोक
राजा शल्य की यह अद्‌भुत बात है कि पांडवों के सहयोग में चले, और

बीच में दुर्योधन का स्वागत पाकर उन्हीं के ऊपर रीझ गये और उनके सेना–नायक बन गये, फिर भी उन्होंने दुर्योधन के लिए समर्पित होकर भी पांडवों के दुख–दर्द को ध्यान में रखते हुए दुर्योधन के पक्ष को धोखा देने की बात स्वीकार ली। राजनीति कितनी घृणित है!

. इंद्र पत्नी शची सहित कैसे दुख उठाये?

युधिष्ठिर ने शल्य से पूछा–इंद्र अपनी पत्नी के सहित कैसे दुख पाये, इसे मैं जानना चाहता हूं। शल्य ने कहा–त्वष्टा नाम के प्रजापति थे। वे इंद्र से वैर रखते थे। उन्होंने विश्वरूप नाम का एक पुत्र पैदा किया। उसके तीन मुख थे। वह एक मुख से वेद–पाठ करता था, दूसरे मुख से शराब पीता था और तीसरे मुख से मानो दिशाओं को पी जायगा, इस प्रकार देखता था। इंद्र उससे भयभीत हुआ। उसने अप्सराओं को भेजा कि उसे भ्रष्ट कर दें तो वह तेजहीन हो जायगा। अप्सराओं ने जाकर प्रयास किया, परन्तु सफल न हुईं। इंद्र ने स्वयं जाकर **वज्र** से विश्वरूप का वध किया। इतने में एक बढ़ई कंधे पर कुल्हाड़ी लेकर आ गया। इंद्र ने कहा कि इस विश्वरूप के सिर को काटकर अलग कर दो। बढ़ई ने उसके तीनों सिर काटकर अलग कर दिये। विश्वरूप जिस मुख से वेदपाठ करता था उससे कपिंजल पक्षी बाहर निकले, जिस मुख से दिशाओं को पी जाने के जोश में देखता था, उससे तीतर निकले और जिससे वह सुरापान करता था, उस मुख से गौरैये तथा बाज पक्षी निकले।

जब त्वष्टा को पता चला कि मेरे पुत्र विश्वरूप का इंद्र ने वध कर दिया है, तब उसने अग्नि में हवन किया और हवनकुण्ड से वृत्रासुर को पैदा किया। उसने सारे आकाश को घेर लिया और त्वष्टा से पूछा कि मैं क्या करूं? त्वष्टा ने कहा–इंद्र को मार डालो। फिर तो इंद्र और वृत्र में घमासान युद्ध शुरू हो गया। वृत्रासुर ने इंद्र को अपने मुख में डाल लिया। इंद्र वृत्र के पेट में चला गया। फिर देवताओं के प्रभाव से वृत्र ने जम्हाई ली, तो इंद्र उसके पेट से बाहर निकल आया और फिर दोनों में युद्ध शुरू हुआ। इंद्र युद्ध से भाग खड़ा हुआ। घबराया हुआ इंद्र ऋषियों और देवताओं के साथ विष्णु भगवान की शरण में गया। विष्णु ने कहा कि वृत्र को जीतना कठिन है। उससे संधि करके उसको जीता जा सकता है। देवताओं ने वृत्रासुर से कहा–इंद्र और आप में संधि होना चाहिए। वृत्र ने कहा–दो बलवानों में संधि कैसे हो सकती है? हां, यदि यह शर्त आप लोग मान लें तो संधि हो सकती है कि मैं इंद्र द्वारा न सूखी वस्तु से, न गीली वस्तु से, न पत्थर से, न लकड़ी से, न अस्त्र से, न शस्त्र से मरूं तथा

न दिन में मरूं न रात में मरूं। देवताओं ने यह शर्त स्वीकार ली।

इंद्र तो वृत्रासुर को मारने के दावं में था। उसने एक संध्या को जब न रात है और न दिन, समुद्र के किनारे वृत्रासुर को देखा और उसने समुद्र के फेन को वृत्रासुर पर फेंका, उस समय विष्णु का तेज उस फेन में घुस जाने से उसी से वृत्रासुर मारा गया। क्रोध में तो यह काम हो गया, परन्तु विश्वासघात के परिणाम में इंद्र दुखी हो गया। विश्वरूप की हत्या करने से इंद्र पहले ही मलिन हो गया था; वृत्रासुर को विश्वास देकर मारने से उसको भयंकर अपराधबोध ने घेर लिया। फिर तो इंद्र लापता हो गया।

इंद्रासन सूना हो गया। सर्वत्र त्राहि-त्राहि मच गयी। फिर ऋषियों और देवताओं ने मिलकर धर्मात्मा राजा नहुष को इंद्रासन पर बैठाकर उसे इंद्रपद दिया, किन्तु कुछ दिनों में वह विषय-लंपट और घमंडी हो गया। उसने एक दिन इंद्र की पत्नी शची को देखा तो उसे वह अपनी पत्नी बनाना चाहा। वह बेचारी भागकर बृहस्पति की शरण में गयी। बृहस्पति ने उसे अभयदान दिया। नहुष ने शची को पाने के लिए दबाव डाला, तो बृहस्पति ने देवताओं से कहा कि शची नहुष से कुछ समय मांग लें, फिर सब काम बन जायगा। समय अनेक विघ्नों से भरा होता है। नहुष को घोर अहंकार हो गया है। उसे काल ही अपने गाल में ले लेगा। फलतः शची ने नहुष से समय मांगा कि मैं जरा अपने पति इंद्र का पता लगा लूं। वह नहीं मिलेगा तो मैं आपके पास आ जाऊंगी।

नहुष ने प्रसन्नता व्यक्त की। शची बृहस्पति के यहां चली गयी। सब देवता इंद्र की खोज में निकले। वे विष्णु भगवान से मिले और कहा-इंद्र ब्रह्महत्या से प्रभावित होकर कहीं छिपे बैठे हैं। उनका उद्धार कैसे होगा? विष्णु ने कहा-इंद्र यज्ञ द्वारा केवल मेरी ही आराधना करें, तो वे पवित्र हो जायंगे और पुनः इंद्रासन पा जायंगे और नहुष अपने बुरे कर्मों के कारण स्वयं नष्ट हो जायगा। थोड़े समय तक धैर्य रखने की आवश्यकता है।

इंद्र ने अपने ब्रह्महत्या के पाप को वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी और स्त्री में बांट दिया। इधर शची ने उपश्रुति नामक रात्रिदेवी की आराधना की और उनसे इंद्र का पता लगाने के लिए प्रार्थना की। उपश्रुति की सहायता से शची इंद्र को खोजते-खोजते एक सरोवर के पास पहुंची। उसमें एक विशाल कमल-नाल था। उसे चीरकर उपश्रुति सहित इंद्राणी ने उसमें प्रवेश किया। शची ने इंद्र की प्रार्थना की। फिर वहां इंद्र मिले। शची ने नहुष की कुचेष्टा बतायी और कहा कि आप नहुष को मारकर अपना इंद्रपद सम्हालिए। इंद्र ने कहा-नहुष बहुत बलवान हो गया है। उसे मारना संभव नहीं है। नीति से काम लेना है। तुम नहुष

से कहो कि वह पालकी पर बैठकर तुम्हारे पास आवे और उस पालकी को ढोने वाले ब्राह्मण ऋषि लोग हों। शची ने जाकर नहुष से यही कहा। नहुष खुश हो गया। वह प्रमाद में पड़ा उन्मत्त था ही, अतएव वह ऋषियों को बुलाकर कहा कि तुम लोग मेरी पालकी अपने कंधे पर रखो, मैं शची से मिलने चलता हूं। ऋषि लोग विवश होकर पालकी उठाये। नहुष का बोझा ढोते–ढोते ऋषि लोग बहुत दुखी हो गये। उन्होंने नहुष से पूछा–गौओं के प्रोक्षण के विषय में जो वेदमंत्र हैं उन्हें आप प्रामाणिक मानते हैं कि नहीं? नहुष ने कहा–मैं इन वेदमंत्रों को प्रामाणिक नहीं मानता। ऋषियों ने कहा–पुराने ऋषियों ने इन वेदमंत्रों को प्रमाण भूत बताया है। इतना सुनते ही नहुष ने अगस्त्य के सिर पर पैर मार दिया। फिर अगस्त्य ने उसे शाप दिया कि तुम देवलोक से गिरकर पृथ्वी पर चले जाओ। फिर तो नहुष स्वर्ग से गिरकर जमीन पर आ गया। नहुष ब्राह्मणों के लिए कंटक हो गया था, अतः पतित हुआ। नहुष पृथ्वी पर सर्प बनकर रहने लगा। फिर तो इंद्र ने स्वर्ग लोक में जाकर अपना इंद्रपद सम्हाला और शची के साथ स्वर्ग में रहने लगा।

शल्य ने कहा–युधिष्ठिर! इस प्रकार इंद्र ने शची के साथ बहुत दुख उठाया। वैसे तुम भी द्रौपदी तथा बंधुओं के साथ बहुत दुख उठाये। परन्तु अब तुम अपना राज्य पाओगे। युधिष्ठिर ने कहा–जब कर्ण और अर्जुन का युद्ध होगा, तब आप कर्ण का सारथि बनेंगे, यह बात पक्की है, तो मामा! उस समय आप अर्जुन के बल की प्रशंसा करके कर्ण के मन को हतोत्साहित करने की कृपा करेंगे। शल्य ने कहा–मैं यह काम तो करूंगा ही, और जो भी सम्भव होगा, तुम्हारी विजय के लिए वह उपाय करूंगा। अठारहवें अध्याय के अंत में आता है कि जो इस इंद्र–विजय के उपाख्यान का पाठ करता है वह स्वर्ग–लाभ करता है, लोक–परलोक में सुखी रहता है। वह संतानहीन नहीं होता। उसे शत्रुजनित भय नहीं होता। उस पर कोई आपत्ति नहीं आती। वह दीर्घायु होता है। वह सर्वत्र विजयी होता है। अंततः राजा शल्य पांडवों से विदा होकर दुर्योधन के पास चले गये (अध्याय –)।

मीमांसा

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"इस अवसर पर शल्य ने युधिष्ठिर को दिलासा देने के लिए सपत्नीक इंद्र के भी दुख सहने का एक आख्यान सुनाया। यह निश्चय ही इंद्र–वृत्र प्राचीन वैदिक आख्यान था जिसे यहां भागवत धर्म का उथला पुट देकर किसी विस्तारकर्ता व्यास ने चलते हुए कथा प्रवाह को रोक कर बे–अवसर भी कह दिया है। अच्छा होता यदि आरण्यक पर्व की कथाओं

की मूसलाधार वृष्टि में इसे भी समेट लिया गया होता।"[1]

वेद में इंद्र सूर्य है और वृत्र पर्वत पर बर्फ है और आकाश में बादल है जिन्हें सूर्य पिघलाता और फाड़ता है। वेद के कितने ही शब्दों को तोड़-मरोड़कर कवियों ने पौराणिक गल्प बना लिया है। स्वर्ग और इंद्रासन निरी कल्पना है। प्रायः ब्राह्मण ही इन सबके लेखक हैं। वे ब्राह्मण-द्रोहियों को नीचा दिखायेंगे ही। विश्वासघात और हत्या करने से इंद्र भी दुखी होता है और अहंकार तथा विषय-लम्पटता से इंद्रपद पाया हुआ नहुष भी पतित होता है; इन काल्पनिक कहानियों से हमें प्रेरणा लेना चाहिए कि अहंकार, हत्या, विश्वासघात, विषय लम्पटता आदि पतन के कारण हैं।

वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं-"इंद्र-वृत्र का यह महान उपाख्यान शल्य के मुख में रखकर कथाकार ने उसे बड़ाई ही दी है। वैसे शल्य बिलकुल बुद्धिहीन था। महाभारत के पात्रों में ऐसा निर्बुद्धि शायद ही कोई हो। रास्ते में बनाये हुए ठहरने के मंडपों को देखकर वह शिल्पियों को इनाम देना चाहता था; किन्तु बिना सोचे-विचारे दुर्योधन को ही अपनी सहायता का वचन दे बैठा और स्वयं ही अपनी लीला कहने के लिए पांडवों के पास पहुंच गया। युधिष्ठिर भी शल्य के चरित्र की नस पहचानते थे। इसलिए उससे कर्ण की तेजोहानि रूपी अनुचित काम करने की प्रार्थना का साहस युधिष्ठिर ने किया-"हे मामा! करने योग्य तो नहीं है, फिर भी हमारे लिए इतना तो कर ही देना।"[2]

इस कथा के अन्त में फलश्रुति आयी है कि इस इंद्र-विजय उपाख्यान को सुनने वाला सब सिद्धि पाता है। इससे ही सिद्ध होता है कि यह कथा बाहर से आकर महाभारत में जुड़ गयी है।

. पांडव और कौरव की क्रमशः सात और ग्यारह अक्षौहिणी सेना

सात्वतवंश के महारथी सात्यकि विशाल चतुरंगिणी सेना लेकर युधिष्ठिर के पास आ गये। चेदि-नरेश धृष्टकेतु, मगध-नरेश जयत्सेन और सहदेव, समुद्रतटवर्ती नरेश, पांचाल-नरेश द्रुपद, मत्स्य-नरेश विराट इन सबकी सात अक्षौहिणी सेना पांडव की सेवा में इकट्ठी हो गयी।

---

1. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**
2. **भारत सावित्री, पृष्ठ ।**

भगदत्त, भूरिश्रवा, शल्य, भोज-अंधक-कुकुर वंश वाले यादवों, कृतवर्मा,

सिंधु–निवासी जयद्रथ, यवन, शक, दक्षिणी भारत के राजा नील, अवंती–नरेश विंद–अनविंद, केकय–नरेश आदि की सेनाएं दुर्योधन के सहयोग में आ गयीं, जो सब ग्यारह अक्षौहिणी थीं। इन्हें पंजाब, कुरुजांगल, रोहितवन, मरुभूमि आदि प्रदेशों में टिका दिया गया (अध्याय)।

. द्रुपद के पुरोहित का कौरव–सभा में भाषण और वापसी

द्रुपद के पुरोहित राजा धृतराष्ट्र के पास पहुंचे। आपस में दण्ड–प्रणाम, शिष्टाचार, कुशल–मंगल पूछताछ के बाद द्रुपद–पुरोहित ने इस प्रकार अपना भाषण शुरू किया–आप सब सनातन राजधर्म जानते हैं। मैं आपके सामने इसलिए कहने जा रहा हूं कि आपसे मुझे कुछ सुनने को मिले। धृतराष्ट्र और पाण्डु एक ही पिता के पुत्र हैं। अतएव पैतृक संपत्ति में दोनों का समान अधिकार है। धृतराष्ट्र के पुत्र पैतृक संपत्ति प्राप्त कर लिए हैं। पांडवों को भी अपनी संपत्ति मिलना चाहिए। आप सब जानते हैं कि धृतराष्ट्र ने सारी संपत्ति अपने अधिकार में कर लिया है; इसलिए पांडवों को अपना अधिकार नहीं मिला। आप लोग यह सब जानते हैं कि दुर्योधन आदि ने पांडवों के समूल नाश का पहले से प्रयत्न किया है, किन्तु पांडवों का प्रारब्ध शेष था। इसलिए वे जीवित हैं। पांडवों ने अपने प्रयत्न से अपना राज्य बढ़ा लिया था, परन्तु धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि ने जुआ के छलबल में युधिष्ठिर को फंसाकर उनका सब कुछ हड़प लिया। धृतराष्ट्र ने भी दुर्योधन के छलबल का समर्थन किया और उनके निर्देशानुसार पांडव तेरह वर्ष के लिए राज्य से निर्वासित होकर वन में चले गये। वे उस अवधि को भी वन में बिताकर आ गये।

कौरव–सभा में द्रौपदी सहित पांडवों को भारी दुख पहुंचाया गया और वन में उन्हें कष्ट देने के उपाय किये गये। पांडवों को विराट के यहां किस तरह छिपे रूप में सेवक बनकर दुखपूर्वक एक वर्ष निभाना पड़ा, यह सब आप लोग जानते हैं। कौरवों द्वारा पहले के किये इन अत्याचारों को भुलाकर पांडव मेल–जोल ही चाहते हैं। पांडवों के आचार–व्यवहार और दुर्योधन के बरताव को समझकर मित्रों का कर्तव्य है कि वे दुर्योधन को समझावें। पांडव न युद्ध चाहते हैं न जन–संहार; वे केवल अपना राज्य चाहते हैं। दुर्योधन जिन कारणों से युद्ध चाहते हैं वे सही नहीं हैं। पांडव कौरवों से बलवान हैं। पांडव के पास सात

अक्षौहिणी सेना इकट्ठी हो गयी है जो केवल युद्ध के लिए आज्ञा चाहती है। कौरवों को परास्त करने के लिए केवल अर्जुन काफी हैं। आप लोग पहले की की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार पांडव को आधा राज्य दे दें जो उनका अधिकार है। ऐसा न हो कि आप इस अवसर को चूक जायं।

भीष्म बुद्धिमान थे। सभा में बैठे थे। वे समझ गये कि पुरोहित पंडित तो है, परन्तु दूत-धर्म के योग्य नहीं है। उन्होंने पुरोहित का सत्कार करते हुए कहा—सब पांडव श्रीकृष्ण के सहित कुशलपूर्वक हैं, यह सौभाग्य की बात है। उनके सहायक धर्म में आरूढ़ हैं यह अधिक हर्ष का विषय है। पांडव संधि चाहते हैं, युद्ध नहीं, यह और भी अच्छी बात है। पुरोहित जी! आपने जितनी बातें कही हैं, वे सब सत्य हैं, परन्तु आपकी बातें बड़ी कड़वी हैं। यह आपका तीखापन शायद आपके ब्राह्मण होने के नाते है। निस्संदेह पांडव बहुत दुख उठाये हैं। अब उनको उनका अधिकार मिलना चाहिए। अर्जुन वीर हैं। उन्हें युद्ध में कौन जीत सकता है।

भीष्म बोल ही रहे थे, बीच में कर्ण ने क्रोधित हो दुर्योधन की तरफ देखते हुए और भीष्म की बात काटते हुए बोलना शुरू किया—ब्रह्मन! बीती मरी हुई बातों को दोहराते हुए भाषण देने की क्या आवश्यकता है? शकुनि ने दुर्योधन के लिए युधिष्ठिर से जुआ खेलकर उनको परास्त किया था और पांडव शर्त में बंधकर वन गये थे। पांडव शर्त पूरी करके अपना राज्य लेना चाहते हैं, ऐसी बात नहीं है। वे तो विराट और द्रुपद की सेना के बल पर राज्य पाने के इच्छुक हैं। परन्तु समझ लो, दुर्योधन किसी भय से आधा राज्य कौन कहे, चौथाई भी नहीं देना चाहेंगे, किन्तु धर्मपूर्वक समूची पृथ्वी दे सकते हैं। यदि पांडव अपना राज्य लेना चाहते हैं तो पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार पुनः तेरह वर्ष वनवास करें। उसके बाद वे दुर्योधन के आश्रय में निर्भयतापूर्वक रह सकते हैं। मूर्खतावश वे अपनी बुद्धि को अधर्मपरायण न बनावें।

भीष्म ने कहा—कर्ण! तू कैसी बातें करता है? अभी पिछले दिनों अकेले अर्जुन ने विराट नगर में तुम छह महारथियों को युद्ध स्थल से खदेड़ दिया था। तेरा बल उस समय देख लिया गया था। ये द्रुपद-पुरोहित जो कह रहे है, यदि इसके अनुसार न किया गया तो युद्ध में हमें धूल चाटना पड़ेगा।

धृतराष्ट्र ने कर्ण को डांटकर भीष्म की बातों का सम्मान किया और उन्हें प्रसन्न करके इस प्रकार कहा—भीष्म की बात सबके लिए हितकारी है। अब मैं कुछ सोच-विचारकर पांडवों के पास संजय को भेजूंगा। ब्रह्मन पुरोहित! अब आप पांडवों के पास पधारें, विलंब न करें। धृतराष्ट्र ने द्रुपद के पुरोहित का

सत्कार करके वापस भेज दिया (अध्याय –)।

. संधि के लिए संजय की सीख और श्रीकृष्ण का उत्तर

धृतराष्ट्र ने संजय को बुलाकर कहा–संजय! लोग कहते हैं कि पांडव इस समय उपप्लव्य नामक स्थान में आ गये हैं। तुम वहां जाकर उनसे आदरपूर्वक मिलो। उनसे कहना कि सौभाग्य की बात है कि आप लोग सकुशल यहां आ गये हैं। पांडवों से कहना कि हम लोग कुशल में हैं। पांडव सदाचारी हैं। वे वनवास का दुख भोगने योग्य नहीं हैं, फिर भी वे अपनी शर्त पूरी करके आये हैं। इतना कष्ट भोगने पर भी वे हम पर कुपित नहीं हैं। पांडव धर्मपरायण हैं। उनमें हमें थोड़ा भी दोष नहीं दिखता है। ऐसे धर्मात्मा पांडवों से मेरा दुष्ट पुत्र दुर्योधन और उसका साथी क्षुद्र स्वभाव वाला कर्ण ही द्वेष करते हैं। दुर्योधन मूढ़ है। वह पांडव का अधिकार दबाये रखने में धर्म की हानि नहीं समझता है। युधिष्ठिर के पीछे अर्जुन, श्रीकृष्ण, भीम, सात्यकि, नकुल, सहदेव और संपूर्ण सृंजयवंशी वीर चलते हैं, उनको उनका राज्य देने में भलाई है। यह ठीक है कि मेरी सेना बड़ी है, किन्तु पांडवों के बल के सामने वह नहीं के समान है। मैंने सुना है कि पांडवों की ओर बड़े-बड़े महारथी आ मिले हैं। मैं सबसे अधिक युधिष्ठिर से डरता हूं, क्योंकि वे धर्म से चलते हैं, इसलिए उनका संकल्प व्यर्थ नहीं जायगा। युधिष्ठिर की कोई भी आज्ञा श्रीकृष्ण टाल नहीं सकते। संजय! तुम वहां जाकर मेरी ओर से उन सबका कुशल–मंगल पूछना। फिर जैसा अवसर हो, उनसे बात करना। उनके बीच ऐसी बात न कहना कि उनका क्रोध भड़के।

संजय उपप्लव्य नामक स्थान में जाकर पांडवों से मिले और उन्होंने कुशल–मंगल पूछने के साथ युधिष्ठिर से इस प्रकार बात करना आरम्भ किया–राजन! यह बड़ी प्रसन्नता है कि आप अपने सहायकों के साथ स्वस्थ और सकुशल हैं। युधिष्ठिर ने कहा–हम अपने भाइयों के साथ सकुशल और स्वस्थ हैं। आपको देखकर मैं राजा धृतराष्ट्र का अनुभव कर रहा हूं। पितामह भीष्म कुशल से हैं न? उनका स्नेह हम पर बना है न? इस प्रकार युधिष्ठिर विस्तारपूर्वक सबका कुशल मंगल पूछते हैं और संजय सबका मंगल बताते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा–राजा धृतराष्ट्र ने जो संदेश दिया है, कृपया उसे बतायें। संजय ने कहा–धृतराष्ट्र शांति चाहते हैं। मैं चाहता हूं कि दोनों पक्षों में संधि हो जाय। पांडवों और कौरवों दोनों दल में शूरवीर हैं। पांडव अधम काम नहीं कर सकते। जहां श्रीकृष्ण और द्रुपद विराजमान हैं, वहां खोट कर्म नहीं हो सकता। मैं हाथ जोड़कर आप लोगों को प्रसन्न करना चाहता हूं, आपकी शरण में आया हूं। आप स्वयं विचारें कि दोनों पक्षों का कल्याण कैसे होगा! श्रीकृष्ण और अर्जुन मेरी बात को ठुकरायेंगे नहीं। मेरा विश्वास है कि मेरे मांगने पर अर्जुन प्राण भी दे सकते हैं, फिर अन्य बात के लिए कहना ही क्या है? राजा युधिष्ठिर! मैं संधि की अभिलाषा लेकर आया हूं। भीष्म और धृतराष्ट्र शांति चाहते हैं। संधि से आप लोगों को भी शांति मिलेगी।

युधिष्ठिर ने कहा–संजय! आपने मेरी कौन ऐसी बात सुनी है जिसमें युद्ध अनिवार्य बताया गया हो जिससे आप भयभीत हैं। युद्ध की अपेक्षा युद्ध न करना उत्तम है। युद्ध न करने का अवसर पाकर कौन समझदार युद्ध करेगा? मैं अच्छी तरह जानता हूं कि कर्म करने से ही फल मिलता है। बिना युद्ध किये थोड़ा भी लाभ बहुत समझना चाहिए। किस देवता ने शाप दे रखा है जिससे भला मनुष्य युद्ध में लग जायगा। हम धर्म के विपरीत काम नहीं करते। विषय-रस चाहने वाला दुख पाता है। विषय-चिंतन करना अपने को पीड़ा देना है। विषय-चिंतन से सर्वथा मुक्त व्यक्ति दुख नहीं पाता। विषय-भोग और धन का लोभ यह ऐसी तृष्णा है कि आग में घी डालने से जैसे आग धधकती है, वैसे यह तृष्णा उत्तरोत्तर धधकती है। राजा धृतराष्ट्र के पास धन बहुत इकट्ठा हो गया है, परन्तु क्या वे सुखी हैं? धृतराष्ट्र पुण्यवान न होते तो हम लोगों को कुरुदेश से कैसे दूर कर देते। राजा धृतराष्ट्र स्वयं विषम बरताव में लगे हैं, परन्तु दूसरों से समता का बरताव चाहते हैं। कोई प्रचंड गरमी के समय सूखी घास के सघन वन में आग लगाकर उसकी आंच से अपना छुटकारा चाहे, वैसे राजा धृतराष्ट्र ऐश्वर्य अपने अधिकार में करके दुर्बुद्धि दुर्योधन का पक्ष लेकर अब क्यों विलाप करते हैं? धृतराष्ट्र विदुर जैसे निष्पक्ष ज्ञानी की बात की अवहेलना करके कुपथ में जा रहे हैं। जब तक कौरव विदुर की सलाह मानते थे, तब तक उनका सब ठीक चलता था परंतु जब से वे विदुर के उत्तम विचारों की अवहेलना करने लगे तब से उन पर विपत्ति आयी।

संजय! दुर्योधन के जो मंत्री हैं वे दुःशासन, शकुनि तथा कर्ण हैं, तीनों आगलगौना। मैं बहुत सोच-विचार करने पर भी कोई उपाय नहीं देखता कि सृंजय और कौरव-वंश का कल्याण हो। हम शत्रुओं से राज्य छीनकर और विदुर को निर्वासित करके राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों सहित निष्कंटक राज्य करते

रहने के लिए आशा लगाये बैठे हैं। ऐसे लोभी नरेश के साथ केवल संधि होगी, युद्ध नहीं, यह असंभव लगता है। कर्ण अपने को बड़ा वीर गिनते हैं। पहले भी युद्ध हुए हैं, उनमें कर्ण ने कौरवों को क्यों नहीं विजय दिलायी। पांडवों का राज्य हर लेना दुर्योधन सरल समझते हैं। इसके लिए गांडीवधारी अर्जुन के सामने युद्ध में आना पड़ेगा। कौरवों की कुचाल से हम लोगों को कितना दुख उठाना हुआ है, यह आप पूरा जानते हैं। फिर भी हम उनके सब अपराध क्षमा कर सकते हैं। अब भी पहले के समान समता हो सकती है। जैसा आप कहते हैं मैं वैसा ही शांति-पथ पकड़ लूंगा; परन्तु इंद्रप्रस्थ में पहले के समान मेरा राज्य हो जाय और भरतवंश शिरोमणि सुयोधन मेरा राज्य मुझे लौटा दें।

संजय ने कहा–पांडुनंदन! आपकी सब बात धर्मानुकूल है। इससे भी ऊंची बात है कि जीवन अनित्य है, परन्तु इसमें महान सुयश की प्राप्ति हो सकती है। आप जीवन की अनित्यता को देखें और अपनी सुकीर्ति को नष्ट न करें। यदि कौरव बिना युद्ध के आपको राज्य न दें, तो भी आपके लिए यह अधिक अच्छा होगा कि आप द्वारका जाकर यादवों से भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह कर लें, परन्तु युद्ध न करें। इस क्षणिक जीवन के लिए रक्तपात करना अच्छा नहीं है। जीवन दुखमय और चंचल है। आप युद्ध रूपी पाप में न लिप्त हों। भोग की कामनाएं मनुष्य को नीचे खींचती हैं। विवेकवान कामनाओं को पहले नष्ट कर देता है। धन की कामना पतन की तरफ ले जाती है। भोगों की इच्छा वाला धन में आसक्त होकर खोटा कर्म करता है और पतित होता है। आप क्रोधजनित नरक तथा हर्षजनित स्वर्ग, दोनों से ऊपर उठकर मोक्षप्राप्ति का उपाय करें। यदि आपको राज्य-प्राप्ति के लिए स्थिर द्वेष के रूप में युद्ध ही करना है; तब तो मैं कहूंगा कि आप पुनः वनवास का कष्ट ही अपना लें। यह वनवास आपके लिए धर्ममय होगा। युद्ध ही करना रहा, तो उसी समय जब जुआ में हारे थे, यहीं रह जाते और आपके पास सेना भी थी। श्रीकृष्ण आदि भी आपके सहायक थे ही। फिर आपने अपना राज्य शत्रु को देकर उसकी शक्ति को क्यों बढ़ाया? किसलिए आपने अपने सहायकों को दुर्बल बनाया? क्यों लंबा वनवास का दुख भोगा? आज जब वह अनुकूल समय बीत चुका है तब आपको युद्ध करने की इच्छा क्यों हुई? पापी भी युद्ध करके धन-ऐश्वर्य प्राप्त कर लेता है और धर्मज्ञ तथा बुद्धिमान मनुष्य भी दुर्भाग्य-वश पराजित होकर ऐश्वर्य से हाथ धो बैठता है। कुंतीनंदन! आप धर्मज्ञ हैं, धर्मवान हैं। बताइए, कौन-सा कारण है जिसके लिए आज आप अपनी बुद्धि के विरुद्ध युद्ध-जैसा पाप कर्म करना चाहते हैं?

संजय ने आगे कहा–पांडुनंदन! जो बिना रोग के उत्पन्न होता है, जो कड़ुवा

है, जो सरदर्द उत्पन्न करता है, जो यश का नाशक और पापवर्द्धक है, जिसे असाधु नहीं पी सकते, केवल सज्जन ही पी सकते हैं, उस क्रोध को आप पी जाइए और शांत हो जाइए। पाप की जड़ क्रोध करने की इच्छा कौन ज्ञानी करेगा? आपकी दृष्टि में क्षमा ही सर्वोच्च है, वे भोग नहीं, जिनके लिए पितामह भीष्म और पुत्र सहित द्रोणाचार्य मारे जायं। ऐसा कौन-सा सुख हो सकता है जिसको आप कृपाचार्य, शल्य, भूरिश्रवा, विकर्ण, विविंशति, कर्ण और दुर्योधन को मारकर पाना चाहते हैं। कृपया बताइए। आप पूरे भूमंडल का सम्राट होकर भी प्रिय-अप्रिय, सुख-दुख और जरा-मृत्यु से अपना पिंड नहीं छुड़ा सकते। यह सब बात आप अच्छी तरह जानते हैं। इसलिए मेरा आग्रह है कि आप युद्ध न करें। यदि आप अपने मंत्रियों की इच्छा से युद्ध करना चाहते हैं, तो आप अपना सर्वस्व उन मंत्रियों को देकर वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण कर लीजिए किंतु आप अपने कुटुंब की हत्या करके अपना लोक-परलोक नष्ट न कीजिए।

युधिष्ठिर ने कहा–संजय! आपकी बातें सोलहों आने सच हैं; परन्तु मेरी बात सुन लीजिए तब आप निर्णय कीजिए कि मैं धर्म कर रहा हूं या अधर्म। यदि मैं अधर्म कर रहा हूं, तो मेरी निंदा कीजिए। कहीं अधर्म धर्म लगता है, कहीं धर्म अधर्म लगता है और कहीं धर्म का सच्चा स्वरूप स्पष्ट रहता है। विवेकवान ही उसके असली स्वरूप को समझते हैं। चारों वर्णों के धर्म निर्धारित हैं। मैं अपने क्षात्र धर्म के अनुसार चलना चाहता हूं। यहां बहुत राजे-महाराजे बैठे हैं और सबके सिरमौर स्वयं श्रीकृष्ण बैठे हैं। ये हमें बतायें कि यदि हम क्षात्रधर्म के विपरीत हैं, तो आप मुझे दोषी ठहरावें। श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम हैं। मैं इनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता।

श्रीकृष्ण ने संजय का प्रत्युत्तर देते हुए कहा–संजय! मैं जिस प्रकार पांडवों की रक्षा, उनका अधिकार दिलाना तथा उनका प्रिय करना चाहता हूं, उसी प्रकार राजा धृतराष्ट्र के पुत्रों का भी चाहता हूं। मैं भी यही चाहता हूं कि दोनों पक्षों में शांति बनी रहे। मैं पांडवों से सदैव यही कहता हूं–'पांडवो! कौरवों से मेल मिलाप करो, उनके प्रति शांत बने रहो।' युधिष्ठिर के मुंह से भी यही बात सुनता हूं और मैं भी यही अच्छा मानता हूं। जैसा कि युधिष्ठिर ने कहा है कि राज्य को लेकर दोनों पक्षों में शांति बनी रहे, यह काम कठिन लगता है। धृतराष्ट्र और उनके पुत्र जिस तरह पांडवों के राज्य को हड़प जाना चाहते हैं, कैसे नहीं कलह बढ़ेगा? संजय! मैं और युधिष्ठिर धर्मविरुद्ध काम नहीं कर सकते, यह बात आप जानते हैं, फिर किस आधार पर आप युधिष्ठिर द्वारा

धर्म–लोप की आशंका करते हैं? गृहस्थ आश्रम में रहने के लिए जो शास्त्रों में विधान है, उसके ग्रहण और त्याग के विषय में वेदज्ञ ब्राह्मणों के विभिन्न विचार हैं। कोई कर्मयोग से तथा कोई कर्मत्याग से सिद्धि बताता है। विद्वान तथा ज्ञानी को भी भोजन तो चाहिए ही।

संजय! ज्ञान चाहे जितना हो, जो कर्म किया जाता है, उसी का फल मिलता है। पानी पीने से प्यास मिटती है, पानी के ज्ञान मात्र से नहीं। अतएव ज्ञान के साथ कर्म का महत्त्व है। जो कर्म को त्यागना ही अच्छा मानता है, उसका ज्ञान व्यर्थ है। तारे अपने कर्म से ही आकाश में चमकते हैं। वायु अपने कर्म से सर्वत्र विचरण कर उपकार करता है। सूर्य कर्म द्वारा ही दिन–रात का विभाग करके सृष्टि को शक्ति देता है। चंद्रमा कर्म द्वारा ही पक्ष, मास तथा नक्षत्रों का योग प्राप्त करता है। अग्नि कर्म द्वारा ही प्रज्वलित होकर गरमी देती है। पृथ्वी कर्म द्वारा ही सृष्टि को धारणकर भार ढोती है। नदियां भी कर्म द्वारा ही प्रवाहित रहकर उपकार करती हैं। इंद्र (प्रकृति शक्ति) कर्म द्वारा ही गर्जना करके वृष्टि करता है जिससे सृष्टि फलवती होती है। संसार में प्रतिष्ठित लोग कर्म द्वारा ही श्रेय प्राप्त करते हैं। संजय! आप विद्वान हैं, सब कुछ जानते हैं, फिर भी कौरवों की स्वार्थ सिद्धि के लिए क्यों वाग्जाल फैलाते हैं?

संजय! पांडव धर्मानुकूल राज्य चाहते हैं। वे क्षात्रधर्म का पालन करते हुए दैववशात मृत्यु को प्राप्त हो जायं तो उत्तम ही माना जायगा। यदि आप शांति धारण करना अच्छा मानते हैं, तो बताइए, राजाओं का धर्म क्या है–युद्ध करना कि युद्ध छोड़कर भाग जाना? क्षत्रिय–धर्म का विचार करते हुए आप जो कुछ कहेंगे मैं उसे सुनूंगा। आप वर्णों के कर्म का विचारकर क्षत्रिय–वर्ण के धर्म को ध्यान में रखते हुए पांडवों के लिए क्या कर्तव्य है, इसको ध्यान में रखकर फिर उनकी प्रशंसा या निंदा करें।

आततायी लोग दूसरे के अधिकार को छीनते हैं। उनके निवारण के लिए ही अस्त्र–शस्त्र, धनुष, कवच आदि बने हैं। लुटेरों के वध के लिए ही अस्त्र–शस्त्र बने हैं। संजय! कौरवों में लुटेरेपन का दोष भयंकर रूप में व्याप्त हो गया है। वे अधर्म के पंडित हैं, और धर्म से दूर हैं। धृतराष्ट्र अपने पुत्रों से मिलकर पांडवों के अधिकार का अपहरण करने के लिए तैयार हो गये हैं। समस्त कौरव भी उन्हीं का अनुसरण करते हैं। वे पुराने राजधर्म को नहीं देखते। चोर चाहे चुपके से धन चुरा ले जाय या सामने से उठा ले जाय, वे चोर–डाकू ही हैं और निंदनीय हैं। संजय! आप स्वयं देखिए, दुर्योधन आदि कौरवों तथा चोर–डाकुओं में क्या अन्तर है? दुर्योधन पांडवों का अधिकार हड़पना चाहता है, परन्तु वह

पांडवों का है, कौरवों के यहां केवल धरोहर रूप में रखा है। परन्तु दुर्योधन उसे हड़पने में धर्म मानता है। संजय! पांडवों के धरोहर को कौरव कैसे ले सकते हैं? अपने अधिकार के लिए लड़ते हुए यदि हम लोग मारे जायं, तो कोई बुरा नहीं है। पराये राज्य की अपेक्षा अपने बाप-दादों का राज्य श्रेष्ठ है। इस सत्य का हे संजय! कौरवों में वर्णन करना।

संजय! दुर्योधन के निमंत्रण पर जो राजे-महाराजे उनकी तरफ से युद्ध करने के लिए इकट्ठे हुए हैं, वे मौत के जाल में फंस चुके हैं। भरी सभा में कौरवों ने जो पांडवों को अपमानित किया है, उस पर ध्यान दीजिए। जब रजस्वला द्रौपदी एक वस्त्र पहने हुए सभा में लायी गयी, तब भीष्म आदि ने भी उसके प्रति उपेक्षा दिखायी। यदि कौरव लोग दुःशासन को उस कर्म से रोक देते तो राजा धृतराष्ट्र मेरे प्रिय होते। दुःशासन मर्यादा के विरुद्ध श्वसुरजनों के बीच में द्रौपदी को घसीट लाया। द्रौपदी उस समय कातर भाव होकर सब तरफ देखती और न्याय का गोहार मचाती रही, किन्तु विदुर के अलावा किसी का मस्तक नहीं पसीजा। उस समय बहुत-से भूपाल सभा में विद्यमान थे, किन्तु सब कायर बने बैठे रहे। एकमात्र विदुर जी ने इस अन्याय का विरोध किया।

संजय! द्यूत-सभा में जो द्रौपदी के साथ दुर्व्यवहार हुआ, उसको भुलाकर आप युधिष्ठिर को उपदेश देना चाहते हैं! द्रौपदी ने उस समय सभा में अत्यंत दुष्कर कार्य किया और उसने अपना तथा अपने पतियों का उद्धार किया। द्रौपदी को उनके श्वसुरजनों के मध्य कर्ण ने क्या कहा था, ध्यान है?-द्रौपदी! अब तेरे लिए दूसरा रास्ता नहीं है। तू दासी है। दुर्योधन के घर में जाकर उनकी सेवा कर। पांडव अपने को जुए में हार चुके हैं, इसलिए अब वे तेरे पति नहीं हैं। तू अब दूसरे पति का चुनाव कर ले। कर्ण की यह बात अर्जुन की हड्डी को छेद कर उनके कलेजे में जाकर चुभ गयी है। जब पांडव मृगचर्म धारणकर वनवास को जाने लगे, तब दुःशासन ने कहा-ये हिजड़े अब नष्ट हो गये और चिरकाल के लिए नरक में चले गये। युधिष्ठिर के सब हार जाने के बाद शकुनि ने कहा-अब तुम द्रौपदी को दावं पर रखकर जुआ खेलो। कहां तक गिनाऊं, जुए के समय जो कुछ निंदनीय वचन कहे गये थे, उन्हें आप जानते हैं। इतने पर भी मैं इस बिगड़े हुए कार्य को बनाने के लिए हस्तिनापुर कौरवों के पास चलना चाहता हूं। यदि पांडवों के अधिकार को दिलाकर इनको कौरवों से संधि करा सका तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। इससे कौरव भी मौत के मुख में जाने से बच जायंगे। मैं कौरव-सभा में शुक्रनीति के अनुसार धर्म और अर्थयुत बात करना चाहता हूं जो हिंसवृत्ति को दबाने वाली होगी। क्या मेरी बातों का कौरव सम्मान

करेंगे?

संजय! यदि कौरव मेरी सम्मति नहीं माने तो समझ लो कि कौरव–दल का युद्ध में भस्मीभूत होना पक्का है। "सुयोधन क्रोध रूप महावृक्ष है, कर्ण उसका स्कंध है, शकुनि शाखा है और दुःशासन उसके फूल–फल हैं। विवेकहीन राजा धृतराष्ट्र उसकी जड़ हैं।"[1] संजय! पुत्रों सहित धृतराष्ट्र एक महावन हैं। पांडव उसमें सिंह हैं। सिंह से वन की रक्षा होती है और वन से सिंह की रक्षा होती है। वन का उच्छेद न होने दें। वन से रहित सिंह मारा जाता है और सिंह–रहित वन को लोग काट डालते हैं। अतएव सिंह वन की रक्षा करे और वन सिंह की रक्षा करे। कौरव लता के समान हैं और पांडव शाल–वृक्ष के समान हैं। लता वृक्ष का सहारा पाकर ही बढ़ सकती है। अतएव पांडव का सहारा लेकर ही कौरवों का भला है। संजय! पांडव धृतराष्ट्र की सेवा करने के लिए तैयार हैं और युद्ध के लिए भी। अब धृतराष्ट्र ही अपना निर्णय दें। विद्वान संजय! पांडव शांति के लिए तैयार हैं, और युद्ध के लिए भी, इन दोनों बातों को समझकर सारी बातें राजा धृतराष्ट्र से कहिएगा (अध्याय –)।

मीमांसा

संजय का युधिष्ठिर के लिए पूर्ण अहिंसा, शांति एवं त्याग का उपदेश उत्तम है। युधिष्ठिर युद्ध के बाद यही बात सोचते और विलाप करते हैं और कहते हैं कि इस घोर रक्तपात तथा स्वजनों तथा गुरुजनों को मारने की अपेक्षा भिक्षावृत्ति से जीवन–निर्वाह करना अच्छा था, परन्तु तब सब कुछ बीत गया होता है। जैसे पूरा नगर जलकर केवल राख रह जाय।

संजय की सीख उत्तम है, परन्तु बात तो यह है कि पांडव भी रजोगुणी क्षत्रिय हैं। वे धर्मवान तो हैं, परन्तु संन्यासी नहीं हैं। संजय की सीख उन पर कहां लग सकती थी? युधिष्ठिर ने थोड़ा उत्तर देकर श्रीकृष्ण पर डाल दिया। श्रीकृष्ण ने समयानुकूल और स्थिति के अनुकूल अपना भाषण दिया जो क्षात्रधर्म के अनुसार था। उनका पूरा व्याख्यान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

---

1. **सुयोधनो मन्युमयो महाद्रुमः स्कंधः कर्णः शकुनिस्तस्य शाखाः।**
दुःशासनः पुष्पफले समृद्धे मूलं राजा धृतराष्ट्रोऽमनीषी
(उद्योग पर्व, अध्याय , श्लोक)

. संजय की विदाई और युधिष्ठिर का कौरवों

के लिए संदेश

संजय ने युधिष्ठिर से कहा–आपका मंगल हो। अब मैं आपसे विदा मांग रहा हूं। मैंने मानसिक आवेग में जो अयुक्त वचन कहे हों, इसके लिए आप क्षमा करेंगे। मैं आप सब से विदा लेकर जा रहा हूं। आप मेरे ऊपर कृपा रखियेगा। युधिष्ठिर ने कहा–मैं आपको जाने की राय देता हूं। आप हमारे सदैव हितचिंतक हैं। हम लोग और कौरव दोनों आपको मध्यस्थ शुद्धचित्त सदस्य समझते हैं। आप विश्वसनीय दूत हैं। आप शीलवान, संतोषी और निर्भ्रांत हैं। आप कटु वचन सुनकर भी क्रोध नहीं करते। आप कड़वी तथा चुभने वाली बात नहीं कहते। आप नीरस और अप्रासंगिक बात भी नहीं करते। आप हिंसारहित तथा धर्मयुत बात-व्यवहार करने वाले हैं। आप हमें अत्यंत प्रिय हैं। आप आ गये, तो विदुर जी आ गये। अर्जुन के तो आप प्रिय सखा हैं।

संजय! आप हस्तिनापुर पहुंचने पर ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदों का अध्ययन करने वाले ब्राह्मणों को मेरा प्रणाम कहिएगा। संन्यासियों, मुनियों तथा बड़े-बूढ़ों को मेरा प्रणाम कहिएगा। धृतराष्ट्र के पुरोहित, आचार्य और उनके ऋत्विजों को प्रणाम कहिएगा। वहां के शूद्र कुलोत्पन्न वृद्ध पुरुषों को मेरा कुशल कहिएगा। व्यापारी, पशुपालक, शस्त्र-विद्या-निपुण आदि सबका कुशल-मंगल मेरी तरफ से पूछियेगा। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, पितामह भीष्म सबके चरणों में मेरा प्रणाम कहिएगा। राजा धृतराष्ट्र के चरणों में मेरा प्रणाम कहिएगा और बताना कि पांडव नीरोग तथा सकुशल हैं। दुर्योधन से भी मेरी तरफ से कुशल-मंगल पूछना। दुःशासन, कर्ण, शकुनि, बूढ़ों, बच्चों, स्त्रियों, वृद्धों, वृद्धाओं, नौकरों सबसे मेरा प्रणाम, मंगलकामना यथायोग्य कहिएगा।

दास-दासियां, लूले, लंगड़े, बौने, बूढ़े, कर्मकर, ब्राह्मण तथा असमर्थ के निर्वाह के लिए जो वृत्ति दी जाती थी, उसे राजा दुर्योधन देते रहें। उन सबका मेरी ओर से कुशल-मंगल पूछना। वहां इकट्ठे नरेशों, राजदूतों तथा अभ्यागतों से कुशल-मंगल पूछकर अंत में मेरा कुशल-समाचार बताइएगा।

संजय! आप दुर्योधन से मेरी बात सुना देना–तुम्हारे मन में जो यह आकांक्षा है कि मैं पांडवों का अधिकार मारकर निष्कंटक राज्य करूंगा, तुम्हारे मन को केवल पीड़ा देने वाली है। हम ऐसे निर्बल नहीं हैं कि तुम्हारी यह दुष्चेष्टा पूरी होने दें। तुम इंद्रप्रस्थ का राज्य हमें लौटा दो, अन्यथा युद्ध करो।

संजय! राजा धृतराष्ट्र के पास पहुंचकर उनके दोनों पैर पकड़कर मेरा

प्रणाम कहना। और कहना कि आपकी कृपा से पांडव सुख से जी रहे हैं। जब पांडव बालक थे तो आप ही की कृपा से उनको राज्य मिला था। पहले उन्हें राजगद्दी पर बिठाकर अब उनको नष्ट न कीजिए। इस पूरे राज्य का एक ही भोक्ता हो, यह विचार ठीक नहीं है। हम सब मिलकर एक साथ सुखपूर्वक रहें, इसी में भलाई है। पितामह भीष्म से कहना–दादा जी! आपने डूबते हुए वंश का उद्धार किया है। आज विचार करके कोई ऐसा रास्ता निकालें जिससे आपके सभी नाती–पोते परस्पर प्रेम से रह सकें।

संजय! विद्वान विदुर जी से कहना–आप युद्ध न होने की सम्मति दें। दुर्योधन से भी कहना कि जो द्यूतक्रीड़ा के समय सभा में द्रौपदी का अपमान किया गया है, उसको हम लोग चुपचाप इसलिए सह लिए हैं कि कौरवों का वध न करना पड़े। पांडव बलिष्ठ होते हुए कौरवों के दिये हुए पहले और पीछे के सभी क्लेश सहे हैं, यह बात सब कौरव जानते हैं। हम लोगों को मृगचर्म पहनाकर जो वन में भेज दिया गया, उसको भी हमने इसीलिए सहा कि कौरवों का हमें वध न करना पड़े। अब हम अपना उचित भाग लेंगे। दुर्योधन! तुम दूसरों के धन का लोभ छोड़ दो। इससे हम लोगों में प्रेम और शांति बनी रह सकती है। हम शांति चाहते हैं, भले ही तुम राज्य का एक टुकड़ा दे दो। "अविस्थल, वृकस्थल, माकंदी, वारणावत और पांचवां कोई भी एक गांव हमें दे दो। इसी से युद्ध नहीं होगा।"[1] हम पांच भाइयों को पांच गांव मिल जाय, हम शांति से गुजर कर लेंगे। भाई भाई से मिले, पिता पुत्र से मिले। पांचाल क्षत्रिय कुरुवंशियों से मुस्कराते हुए मिलें। मेरी यही शुभकामना है कि कुरु–पांचालों को स्वस्थ शरीर देखूं। भरतश्रेष्ठ दुर्योधन! हम लोग प्रसन्न चित्त होकर शांत हो जायं, ऐसा प्रयत्न करो। संजय! मैं शांति रखने में शक्तिमान हूं और युद्ध करने में भी। मैं धर्म–अर्थ का ज्ञान रखता हूं। मैं समयानुकूल कोमल हो सकता हूं और कठोर भी (अध्याय –)।

. संजय का राजा धृतराष्ट्र को सलाह देना

संजय युधिष्ठिर से विदा होकर हस्तिनापुर पहुंचे और सीधे राजभवन में गये, और द्वारपाल से राजा धृतराष्ट्र को संदेश दिये और राजा की आज्ञा पाकर

---

1. **अविस्थलं वृकस्थलं माकन्दीं वारणावतम्।**
   अवसानं भवत्वत्र किंचिदेकं च पंचमम् उद्योगपर्व, ,

उनके पास पहुंचे। संजय ने राजा का नमस्कार किया और युधिष्ठिर का अभिवादन कहकर कहा कि युधिष्ठिर ने आपका कुशल-मंगल पूछा है। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से आपके पुत्रों का कुशल-मंगल पूछा।

संजय ने कहा–युधिष्ठिर को पहले जो राज्य और धन प्राप्त था, उन्हें वे पुनः वापस लेना चाहते हैं। वे शीलवान और धर्मयुक्त हैं। आपका कर्मदोष अत्यंत भयंकर है और यह परिणाम में दुख देने वाला है। आप अपने कर्म पर ध्यान दीजिए। श्रेष्ठ पुरुषों का जो धर्म और अर्थयुत व्यवहार है, आपका व्यवहार उसके विपरीत है। इसीलिए आपकी इस लोक में निंदा हो रही है और परलोक में इसका फल नरक होना ही है। आप पांडवों की सारी संपत्ति हड़पना चाहते हैं। अब यह संभव नहीं होगा। इसके परिणाम में आपका बुरा होना ही है। कर्ण आदि मिलकर जो कुछ दुर्योधन को मंत्रणा देते हैं, वह विनाश की तरफ ले जाने वाली है। विषयों की तृष्णा का अंत होने पर ही मन शांत हो सकता है। बुरा करने से निंदा होती है और भला करने से प्रशंसा। राजन! आप भरतवंश में विरोध फैलाते हैं। इसलिए मैं आपकी निंदा करता हूं। आप यदि मेरी बात नहीं मानते हैं, तो कौरव-वंश उसी प्रकार जल मरेगा जिस प्रकार आग लगने पर सूखा घासफूस जलकर भस्म हो जाता है।

जुआ में धोखा देकर आपके पुत्रों ने जो पांडवों को जीता, उसमें आप बहुत प्रसन्न थे। उसका परिणाम अब आप देख लीजिए। आपने शकुनि-कर्ण आदि को अपने पास इकट्ठा कर लिया है जो खतरनाक हैं और जो हितकर थे उन पांडवों को दूर कर दिया है। इस दुर्बलता के कारण आपका सब कुछ खोना है। हे राजन! मैं यात्रा से आया हूं। रथ की जर्किंग से थका हूं। मैं अभी विश्राम करने के लिए आपसे आज्ञा मांगता हूं। कल प्रातः जब सभी कौरव सभा में बैठेंगे, तब मैं युधिष्ठिर का संदेश सुनाऊंगा। धृतराष्ट्र ने कहा–संजय! मैं आज्ञा देता हूं, तुम जाकर विश्राम करो। कल प्रातः युधिष्ठिर का संदेश सभा में सुनाना (अध्याय)।

. विदुर के उपदेश

संजय के चले जाने पर धृतराष्ट्र ने तुरन्त विदुर को बुलाया। विदुर उपस्थित हुए। राजा ने कहा–विदुर। बुद्धिमान संजय आया था, वह मुझे धिक्कार कर चला गया। कल वह कौरव-सभा में युधिष्ठिर का संदेश सुनायेगा। आज मैं युधिष्ठिर का संदेश न जान सका, इसलिए मुझे नींद नहीं आ रही है। मेरा मन चिंता में जल रहा है। मुझे जिससे शांति मिले उसे कहो। तुम

विवेकी हो। संजय जब से लौटकर आया है, उसकी बात सुनकर तथा कल वह सभा में क्या कहेगा, इस चिंता को लेकर मैं बहुत बेचैन हूं।

विदुर ने कहा–राजन! किसी बलवान से विरोध हो जाने पर निर्बल मनुष्य को, जिसका सर्वस्व हरण हो गया हो, उसको तथा कामी और चोर को नींद नहीं आती है। क्या उक्त बातों में से आपको कुछ घेर लिया है? पराये धन के लोभ से तो आपको चिंता नहीं हो रही है?

धृतराष्ट्र ने कहा–विदुर! तुम इस राजर्षि वंश में सर्वोच्च विद्वान हो। मैं तुम्हारे कल्याणकारी वचन सुनना चाहता हूं।

विदुर ने कहा–राजन! युधिष्ठिर उत्तम गुणों से युक्त हैं। वे पूरी पृथ्वी के सम्राट हो सकते हैं, परन्तु आपने उन्हें वन में भेज दिया। आप धर्मात्मा होते हुए युधिष्ठिर को पहचान न सके, अतएव आप उन्हें राज्य का भाग न दे सके। पांडव विचारवान हैं, इसलिए उन्होंने सब दुख सह लिया। आप दुर्योधन, शकुनि, कर्ण, दुःशासन–जैसे अयोग्य लोगों के भरोसे कैसे सुख चाहते हैं? अपने स्वरूप का यथार्थ ज्ञान, परिश्रम, सहनशीलता और नैतिकता में स्थिरता, ये सद्‌गुण जिसमें होते हैं उसका पतन नहीं होता। वह ऊपर उठता है। बुरे कर्मों से परहेज, अच्छे कर्मों का आचरण, सत्य के प्रति आस्था तथा श्रद्धा पंडित के लक्षण हैं। क्रोध, हर्ष, घमंड, लज्जा, उद्दंडता और अपने को पूज्य मानना पतन के पथ हैं। जो इनसे बचे वह पंडित है। जो मौन होकर काम करता है; उसका फल सामने आने पर लोग जानते हैं, वह पंडित है। ठंडी–गरमी, भय–मोह तथा संपत्ति अथवा विपत्ति जिसके कार्य में बाधा नहीं बन पाते, वह पंडित है। जिसकी व्यावहारिक बुद्धि धर्म–अर्थ का अनुसरण करती है और जो भोगों से बचकर पुरुषार्थ–परायण है, वह पंडित है।

विवेकी पुरुष शक्ति के अनुसार काम करते हैं। वे किसी को तुच्छ समझकर उसकी अवहेलना नहीं करते। देर तक सुनना, शीघ्र समझ लेना, केवल कर्तव्य बुद्धि से परिश्रम करना, कामना से नहीं; बिना पूछे न बोलना, दूसरे की चर्चा से बचना, दुर्लभ वस्तु की कामना न करना, खोयी हुई वस्तु के लिए शोक न करना, विपत्ति में न घबराना, पहले निश्चय करके कार्य आरंभ करना, बीच में न रुकना, समय व्यर्थ न गंवाना, मन को वश में रखना, पांडित्य के लक्षण हैं। पवित्र कर्म में रुचि रखना, उन्नति के कार्य करना, भलाई करने वालों में दोष न निकालना, सम्मान पाकर हर्ष में न फूलना, अनादर से दुखी न होना, गहरे सरोवर की तरह क्षोभ–रहित रहना, पांडित्य के लक्षण हैं।

वही पंडित है जो सब कुछ की परिवर्तनशीलता को देखता है, व्यवहार करने का ढंग जानता है और दुख से रहित रहने का उपाय जानता है। प्रवाहपूर्ण बोलना, प्रतिभाशाली होना, विचित्र ढंग से बोलना, तर्कनिपुण होना और ग्रंथों के तात्पर्य को जानना भी अपने ढंग का पांडित्य है। जिसकी बुद्धि विद्या का और विद्या बुद्धि का अनुसरण करती है, जो बड़ों की मर्यादा रखता है, वह पंडित है। अज्ञानी होकर ज्ञानी होने का गर्व करना, दरिद्र होकर बड़ी-बड़ी कामनाएं करना, बिना परिश्रम के धन पाने की इच्छा करना मूर्खता के लक्षण हैं। कर्तव्य कर्म का त्याग करना, मित्रों के साथ असत व्यवहार करना, न चाहने वाले को चाहना और चाहने वाले को त्याग देना, बलवानों के साथ वैर बांधना, मित्र से द्वेष करना, बुरे कर्म आरंभ करना, व्यर्थ विस्तार करना, सब पर संदेह रखना, कार्यों में विलंब करना, बिना बुलाये किसी के घर के भीतर जाना, बिना पूछे बहुत बोलना, अविश्वसनीय पर विश्वास करना, स्वयं गलती करके उसका दोष दूसरे पर मढ़ना, क्रोध करना, अनधिकारी को उपदेश करना, शून्य की उपासना करना, कृपण का आश्रय लेना मूर्खता के लक्षण हैं।

जो धन, विद्या, ऐश्वर्य एवं प्रतिष्ठा पाकर भी घमंड नहीं करता, जो बांटकर खाता है, समता से रहता है, वह पंडित है। एक (बुद्धि) से दो (कर्तव्य-अकर्तव्य) का निश्चय करे, चार (साम, दाम, दंड, भेद) से तीन (शत्रु, मित्र और उदासीन) को वश में करे। पांच (आंख, नाक, कान, जीभ तथा चाम) को जीतकर, छह (संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वेधी भाव और समाश्रय) गुणों को जानकर तथा सात (स्त्री, जुआ, मृगया, मद्य, कटुवचन, दंड की कठोरता और अन्याय से मिले धन) को त्यागकर सुखी हो जाइए।

विष एक खाने वाले को मारता है, अस्त्र-शस्त्र एक को मारता है; परन्तु गुप्त मंत्रणा का प्रकाशित होना पूरे राष्ट्र को मारता है। अकेला स्वादिष्ट भोजन न करे, किसी विषय का अकेला निश्चय न करे, अकेला रास्ता न चले, बहुत सोये हुए लोगों में अकेला न जागे। जैसे समुद्र पार जाने के लिए जहाज ही साधन है, वैसे शुभगति के लिए सत्य ही एकमात्र साधन है; परन्तु राजन! आप इस बात को नहीं समझते हैं। लोग क्षमाशील को असमर्थ समझ लेते हैं, परन्तु क्षमाशील ही महा बलवान है। क्षमा असमर्थों का गुण है और समर्थों का आभूषण है। क्षमा वशीकरण मंत्र है। क्षमा से क्या नहीं सिद्ध होता है? जिसके हाथ में शांति रूपी तलवार है, उसका दुष्ट क्या कर सकते हैं? तृणरहित जमीन पर गिरी हुई आग अपने आप बुझ जाती है। क्षमाशील को कोई समस्या नहीं। क्षमाहीन स्वयं जलता है, दूसरों को जलाता है। केवल आत्मसंयम कल्याण रूप

है। क्षमा ही शांति का उपाय है। आत्मज्ञान ही संतोष देने वाला है। एकमात्र अहिंसा ही सुख देने वाली है।

अकर्मण्य गृहस्थ और प्रपंची विरक्त, दोनों अधम हैं। राजा प्रजा की रक्षा करे और ज्ञानी संसार में विचरण करे। थोड़ा भी कठोर न बोले और दुष्ट मनुष्यों की उपेक्षा रखे। शक्तिमान होकर भी क्षमा करने वाला और गरीबी में दान करने वाला शोभनीय है। अपात्र को देना और सत्पात्र को न देना धन का दुरुपयोग है। धनी होकर भी दान न करना और निर्धन होकर भी कष्ट सहन न करना डूब मरने के समान है। दूसरे के धन का हरण, दूसरे की स्त्री का संग और सुहृद मित्र का त्याग करना अपने को क्षीण करना है। काम, क्रोध और लोभ, तीनों नरक के द्वार हैं। इन्हें पूर्णतया त्यागकर सुख है। वरदान, राज्य और पुत्र–प्राप्ति की अपेक्षा शत्रु के दुख से छूट जाना उत्तम है। भक्त, सेवक और जो कहे कि मैं आपका हूं, इन तीनों का त्याग न करे। थोड़ी बुद्धि वाले, कार्य करने में देरी लगाने वाले, जल्दबाज और अधिक प्रशंसा करने वालों के साथ गुप्त सलाह न करे।

सद्गृहस्थ के घर में चार प्रकार के मनुष्य आदरपूर्वक रहना चाहिए–अपने कुटुंब का बूढ़ा, संकट में पड़ा हुआ भद्र मनुष्य, धनहीन मित्र और संतानहीन बहिन। चार तत्काल फल देते हैं–आत्मसंयमी मनुष्य का संकल्प, बुद्धिमानों का प्रभाव, विद्वानों की विनम्रता और पापियों का विनाश। वाक्यसंयम और स्वाध्याय से मन निर्मल होता है। माता, पिता, आत्मा और गुरु सेवनीय हैं। साधु–संन्यासी, अतिथि और मनुष्य मात्र का आदर–सत्कार करना कल्याण–कारी है। बड़े लोग जहां जाते हैं, वहां मित्र, शत्रु, उदासीन, आश्रय देने वाले और आश्रय लेने वाले पीछे लगे रहते हैं। पांच ज्ञानेंद्रियों में से एक भी विचलित हो जाय, तो उसकी बुद्धि वैसे ही बाहर बह जायगी जैसे घड़े में छेद होने से पानी बह जाता है। उन्नति चाहने वाले लोगों को अधिक नींद, तंद्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता से बचना चाहिए।

सत्य, दान, कर्मशीलता, अनसूया, क्षमा और धैर्य सदैव जीवन में बनाये रखे। धन की प्राप्ति, नीरोग्यता, प्रियवादिनी पत्नी का मिलना, पुत्र का आज्ञाकारी रहना और धन पैदा करने का ज्ञान गृहस्थ के लिए सुखद है। शरीर में रहने वाले छह शत्रु हैं–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा ईर्ष्या, जो इनको जीत लेता है वह सारे अनर्थों से बचकर सच्चा सुख भोगता है। चोर असावधान मनुष्यों से, वैद्य रोगी से, कामोन्मत्त स्त्रियां कामियों से, पुरोहित यजमानों से, राजा झगड़ने वालों से तथा विद्वान मूर्खों से अपनी जीविका चलाते हैं।

असावधान होने से व्यवसाय और मनुष्यों का संबंध नष्ट हो जाता है। शिक्षा समाप्त होने पर शिष्य गुरु का, विवाहित पुत्र माता-पिता का, काम-वासना शांत होने पर पुरुष स्त्री का, काम हो जाने पर सहायकों का, नदी पार हो जाने पर नाव का तथा रोगी रोग छूट जाने पर वैद्य का प्रायः सम्मान नहीं करते। नीरोग्यता, कर्ज-हीनता, स्वदेश-निवास, सद्‌गुणियों की मित्रता, स्वावलंबी जीविका और निर्भयता मनुष्यलोक के सुख हैं। ईर्ष्या, घृणा, क्रोध, असंतोष, संदेहशीलता तथा परावलंबी जीविका दुखदायी हैं।

विषयासक्ति, जुआ, शराब, शिकार, कठोर वचन, कठोर दंड और धन का दुरुपयोग त्याग देना चाहिए। बुद्धि, कुलीनता, इंद्रियनिग्रह, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, वाक्यसंयम, दान और कृतज्ञता से सुख और प्रसिद्धि बढ़ती है। जो मनुष्य नौद्वार, तीन खंभे और पांच साक्षी वाले आत्मा के निवास स्थान रूप इस शरीर-गृह को विवेक से जानता है, वह बहुत बड़ा ज्ञानी है। नशेड़ी, असावधान, पागल, थका हुआ, क्रोधी, भूखा, जल्दबाज, लोभी, भयभीत और कामी धर्म के तत्त्व को नहीं जानते। अतएव इनसे दूर रहे। जो राजा काम-क्रोध का त्याग करता है, सुपात्र को धन देता है, विशेषज्ञ है, शास्त्रों का ज्ञाता और कर्तव्यकर्म को शीघ्र पूरा करने में निपुण है, उसको सब आदर देते हैं। जो मनुष्यों में विश्वास उत्पन्न करना जानता है, किसी का अपराध प्रमाणित होने पर उसे दंड देता है, जो दंड देने की कम-अधिक मात्रा जानता है, जो क्षमा का उपयोग करता है, उस राजा की सेवा में संपूर्ण संपत्ति आ जाती है।

जो दुर्बल का अपमान नहीं करता, शत्रु के साथ सावधान रहकर बुद्धिपूर्वक व्यवहार करता है, बलवानों से नहीं भिड़ता, समय अनुकूल होने पर पराक्रम दिखाता है, वह धीरवान है। जो आपत्ति काल में दुखी नहीं होता, सावधानी से उद्योग करता है और दुख आने पर उसे निर्विकार भाव से सहता है, वह शत्रु-विजयी है। जो निरर्थक विदेशवास नहीं करता; पापियों से मेल, परस्त्री गमन, पाखंड, चोरी, चुगुलखोरी तथा शराबपान नहीं करता, वह सुखी रहता है। जो क्रोध तथा जल्दीबाजी में धर्म, अर्थ और काम का आरंभ नहीं करता, सत्य बोलता है, किसी से झगड़ा नहीं करता, आदर न पाने पर क्रोध नहीं करता, विवेक नहीं खोता, दूसरों के दोष नहीं देखता, सब पर दया करता है, असमर्थ होते हुए किसी की जमानत नहीं देता, बढ़-बढ़ कर नहीं बोलता और विवाद को सह लेता है, वह सर्वत्र सुखी तथा प्रशंसित होता है। जो सादा रहता है, बढ़-बढ़ कर बात नहीं करता, कटु वचन नहीं बोलता, वह लोगों का प्यारा होता है।

जो बुझी हुई वैर की आग को पुनः उत्तेजित नहीं करता, घमंड नहीं करता, दीनता नहीं दिखाता, मैं विपत्ति में पड़ा हूं ऐसा सोचकर गलत काम नहीं करता, वह श्रेष्ठ मनुष्य है। सुख में प्रसन्न न होना, दूसरे के दुख में हर्ष न मानना, और दान देकर पश्चाताप न करना सदाचारी का लक्षण है। जो दंभ, मोह, ईर्ष्या, हिंसा, राजद्रोह, चुगुलखोरी, वैर तथा मतवाले, पागल और दुर्जनों से विवाद नहीं करता, वह श्रेष्ठ है। अपने बराबरवालों के साथ विवाह, मित्रता, व्यवहार तथा बातचीत करे, हीन लोगों के साथ नहीं; और सद्‌गुणियों को आदर दे, यह श्रेष्ठ नीति है। लोगों में बांटकर थोड़ा खाना, खूब काम करके भी अधिक न सोना, मांगने पर शक्ति चले तक देना उत्तम मनुष्य के लक्षण हैं। जो सब में शांति स्थापन करता है; जो सत्यवादी, कोमल, दूसरों को आदर देने वाला और पवित्र विचार वाला है, वह अच्छी खान से निकले हुए चमकते रत्न के तुल्य अपनों में प्रसिद्धि पाता है। लज्जाशील, शुद्ध हृदय और एकाग्र मन वाला लोगों में शोभनीय होता है। राजन! पांडु के पांचों बच्चों को आप ही ने पाला है, उन्हें शिक्षा दिलायी है। वे आपके आज्ञापालक हैं। उनको उनका राज्य देकर आप अपने पुत्रों के सहित आनंद से जीवन बिताइए। ऐसा करने से आप आलोचना के विषय नहीं बनेंगे (अध्याय)।

. विदुर के उपदेश

धृतराष्ट्र ने कहा–तात! मैं चिंता में जलते हुए अभी तक जाग रहा हूं। मुझे तुम ठीक–ठीक बताओ कि क्या करना चाहिए? मेरे मन में सदैव अनिष्ट की भावना बनी रहती है। मैं सर्वत्र अपना अनिष्ट ही देखता हूं। यह बताओ कि युधिष्ठिर क्या चाहते हैं?

विदुर ने कहा–मनुष्य को चाहिए कि जिसकी वह पराजय नहीं चाहता है, उसको उसके बिना पूछे ही सही बात बता दे कि उसका कल्याण किसमें है। मैं वही बात कहूंगा जिसमें समस्त कौरवों का हित है। असत कार्य से जो काम सिद्ध होता है, उसमें आप अपना मन न लगाइए। सत उपाय से किया गया कर्म यदि कभी न सफल हुआ हो, तो भी समझदार मनुष्य ग्लानि नहीं करता। अपना प्रयोजन ठीक से समझकर स्थिर चित्त से काम करे, शीघ्रता न करे। जो राजा स्थिति, लाभ, हानि, खजाना, देश, दंड आदि की मात्रा नहीं समझता, वह राज पर स्थित नहीं रह सकता। मैं राजा हूं, ऐसा अहंकार कर उद्दंडतापूर्वक बरताव करने वाला राज्य से पतित हो जाता है। उद्दंडता संपत्ति को वैसे नष्ट कर देती है जैसे बुढ़ापा सुंदरता को नष्ट कर देता है। मछली चारा खाने के लोभ से बंसी

के कांटे को निगल जाती है और मारी जाती है, अतएव मनुष्य को वही खाद्य खाना चाहिए जो पच सके और पच जाने पर गुणकारी हो। वृक्ष के कच्चे फल को तोड़ने का मतलब है, बीज को भी नष्ट कर देना, उसको खाना तो संभव ही नहीं है। किन्तु जो पके फल खाता है, वह उसका रस पाता है और उसके बीज भी पाता है जो आगे के लिए फल देने वाले होते हैं।

जैसे भंवरे फूलों की रक्षा करते हुए उनसे रस लेते हैं, वैसे राजा प्रजा की रक्षा करते हुए उनसे कर ले। जैसे माली बगीचे की रक्षा करते हुए उससे फूल लेता है वैसे राजा प्रजा की रक्षा रखते हुए उससे कर ले। जैसे नपुंसक को कोई स्त्री अपना पति नहीं बनाना चाहती, वैसे उस राजा को प्रजा नहीं स्वीकारती जिसकी प्रसन्नता का न कोई फल होता है और न क्रोध का कोई फल मिलता है। बुद्धिमान वह काम करता है जिसका मूल छोटा होता है, और फल महान होता है। "जो राजा कोमल दृष्टि से प्रजा को ऐसा देखता है कि मानो वह आंखों से पी जायगा, वह चुपचाप बैठा भी रहे, तो भी प्रजा उससे प्रेम करती है।"[1] राजा अपने को सम्हालकर रखे। वह नेत्र, मन, वाणी और कर्म से प्रजा को प्रसन्न रखे। बाघ से लोग डरते हैं, वैसे जिस राजा से लोग डरते हैं, वह चाहे जितना बड़ा राजा हो, प्रजा द्वारा त्याग दिया जाता है। अन्यायी राजा बाप-दादों से प्राप्त राज्य भी वैसे नष्ट कर देता है जैसे हवा बादल को नष्ट कर देती है। धर्म का आचरण करने वाला फलता-फूलता है। अधर्मी राजा का राज्य वैसे सिकुड़ जाता है, जैसे आग पर रखा चाम सिकुड़ जाता है। दूसरे के राज्य को नष्ट करने का जैसा प्रयास राजा करता है, उसे चाहिए अपने राज्य को समृद्ध करने एवं प्रजा के पालने में वैसा बल लगावे।

जैसे पत्थर से सोना निकाल लिया जाता है, वैसे बकवादी और पागल की बातों से भी सज्जन सार लेता है। जैसे शिल और उंछवृत्ति से निर्वाह करने वाले अन्न की एक-एक बाल तथा दाने बीनते हैं, वैसे विवेकवान सब जगह से सत्य बातों, सूक्तियों और सत्कर्मों का चुनाव करते हैं। गौएं गंध से, विद्वान प्रज्ञा से, राजा गुप्तचरों से तथा साधारण लोग आंखों से देखते हैं। जो गाय कठिनाई से दुहने देती है, वह कष्ट पाती है, जो धातु सरलता से मुड़ जाती है, उसे तपाया नहीं जाता, जो काठ झुका हुआ है उसे झुकाया नहीं जाता, इसी प्रकार जो बलवान के सामने स्वयं झुक जाता है, वह कष्ट नहीं पाता। सत्य से धर्म की, योग से ज्ञान की, स्वच्छता से रूप की और सदाचार से कुल की रक्षा होती है।

---

1. **ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव।**
   आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यन्ति तं प्रजाः उद्योग पर्व ,

सदाचार–हीन व्यक्ति उच्च कुल का कहलाने से कोई विशेषता नहीं पा सकता। हीन कहे जाने वाले कुल में पैदा हुआ व्यक्ति अपने सदाचार से पूजित होता है। दूसरे के धन, रूप, बल, कुलीनता, सुख, सौभाग्य और सम्मान पर डाह करना मनुष्य का असाध्य रोग है। न करने योग्य काम करने से, करने योग्य काम के प्रति असावधानी से, कार्य होने के पहले मंत्र के प्रकट हो जाने से और नशा मात्र से डरना चाहिए। धन, विद्या और उच्च कुल अविवेकियों में मद बढ़ाते हैं और विवेकियों में दम (विनम्रता) लाते हैं।

आत्मकल्याण–पथ पर चलने वालों के सहारा संत हैं, संत के भी सहारा संत हैं और दुष्ट का भी हित संत करते हैं, परन्तु दुष्ट संतों को सहारा नहीं देते। अच्छे वस्त्रों को पहनकर सभा में शोभनीय होता है, गो–पालन से मिष्ट दूध मिलता है, वाहन से पथ पर विजय होती है; परन्तु *"सर्वं शीलवता जितम्* (उद्योग पर्व ,)।"–शीलवान सब पर विजयी होता है। "मनुष्य में शील ही प्रधान है। जिसका वह नष्ट हो गया, उसका संसार में जीवन, धन और बंधुओं से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।"[1] धन–मद में मतवालों के भोजन में मांस प्रधान है, मध्य श्रेणी वालों के भोजन में दूध–दही आदि और दरिद्रों के भोजन में तेल की प्रधानता होती है। दरिद्र मनुष्य सदैव स्वादिष्ट भोजन जीमते हैं, भूख उनके भोजन में स्वाद उत्पन्न करती है। परन्तु धनियों को भूख दुर्लभ है। धनियों को भोजन पचाने की शक्ति प्रायः नहीं होती, किंतु दरिद्रों को तो काष्ठ भी पच जाता है। अधम मनुष्य जीविका को लेकर भयभीत होते हैं, मध्यम मनुष्य मृत्यु को लेकर, किंतु उत्तम मनुष्य अपमान को लेकर भयभीत रहते हैं।

पीने का नशा नशा ही है; परन्तु ऐश्वर्य का नशा ऐसा है कि वह मनुष्य को लेकर डूबता है। इंद्रिय–लंपट मनुष्य वैसे ही तेजहीन हो जाता है जैसे सूर्य उगने पर तारों का प्रकाश। जो विषयों में डूबा है उसकी विपत्ति उत्तरोत्तर वैसे बढ़ती है जैसे शुक्लपक्ष का चंद्रमा। जो इंद्रियों को जीते बिना सहायकों को जीतना चाहता है, उसे सब लोग त्याग देते हैं। जो अपने मन–इंद्रियों को जीत लेता है, वह मानो विश्वविजयी हो गया। मन और इंद्रियों को जीतने वाले, अपराधियों को दंड देने वाले और जांच–परख कर काम करने वाले मनुष्य की लक्ष्मी सेवा करती है। शरीर रथ है, बुद्धि सारथि है और इंद्रियां घोड़े हैं। इनको वश में रखने वाला सुखपूर्वक संसार–पथ को पार कर जाता है। अशिक्षित घोड़े रथ को

---

1. **शीलं प्रधानं पुरुषे तद् यस्येह प्रणश्यति।**
   न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः उद्योग० ,

खड्ड में गिराकर जैसे सवार को मार देते हैं, वैसे असंयत मन-इंद्रिय मनुष्य को संसार में पतित कर देते हैं। इंद्रिय-लंपट मनुष्य अर्थ को अनर्थ और अनर्थ को अर्थ समझकर बहुत बड़े दुख को सुख मान बैठता है। जो मनुष्य धर्म और अर्थ का परित्याग करके इंद्रियों का गुलाम हो जाता है, वह ऐश्वर्य, प्राण, धन तथा स्त्री से भी हाथ धो बैठता है। अधिक धनी भी इंद्रिय-लंपटता से दरिद्र हो जाता है।

मन, बुद्धि तथा इंद्रियों को जीतकर आत्मा द्वारा आत्मा का अन्वेषण करे- *"आत्मना आत्मानम् अन्विच्छ (अन्वीक्षो)।"* आत्मा ही अपना मित्र है। आत्मा ही अपना शत्रु है। जीता हुआ आत्मा मित्र है और न जीता हुआ आत्मा शत्रु है। जैसे जाल में फंसी हुई दो मछलियां जाल को काट दें, वैसे काम-क्रोध विवेक को लुप्त कर देते हैं। मूर्ख मनुष्य सज्जन को गाली देकर तथा उनकी निंदा करके उन्हें दुख पहुंचाते हैं। गाली देने वाला पाप बटोरता है और क्षमा करने वाला मुक्त होता है। दुष्टों का बल हिंसा है, राजा का बल दंड है, स्त्री का बल सेवा है और विवेकियों का बल क्षमा है। वाणी का संयम महान सद्‌गुण है। विशेष अर्थयुक्त और आकर्षक वाणी बहुत नहीं बोली जा सकती। गुणों में दोष न देखना, सरलता, पवित्रता, संतोष, प्रियवचन, इंद्रियदमन, सत्यभाषण तथा सरलता, ये सद्‌गुण दुरात्मा में नहीं होते। आत्मज्ञान, अक्रोध, सहनशीलता, धर्मपरायणता, वचन की रक्षा और दानशीलता अधम मनुष्य में नहीं होते। मधुरवचन कल्याणकारी है, कटुवचन अनर्थ उत्पन्न करते हैं। फरसे से कटा पेड़ पुनः अंकुरित हो सकता है, परंतु कटु वचन से कटा मन जल्दी अच्छा नहीं होता। कांटे, बाण आदि शरीर में धंस गये हैं, तो उन्हें निकाला जा सकता है, किंतु कटु वचन रूपी बाण मन में चुभ जाने से नहीं निकलते। कटु वचन लोगों के मन को पीड़ा देते हैं। इसलिए कटु वचन का प्रयोग न करे। विनाश काल का लक्षण है मन का मलिन हो जाना। राजन! आपके पुत्रों के मन में पांडवों के प्रति विरोध व्याप्त हो गया है। आप इस सच्चाई को नहीं समझ रहे हैं। युधिष्ठिर आपके पुत्रों से अधिक ठीक हैं। युधिष्ठिर दया, सौम्यता तथा आपके प्रति गौरव-बुद्धि रखने के कारण बहुत दुख सह रहे हैं (अध्याय)।

. विदुर के उपदेश

विदुर ने कहा-राजन! आप राज्य के लिए झूठ न बोलें। पुत्र के स्वार्थ में सच्ची बात न कहकर पुत्र और मंत्रियों के साथ विनाश के मुख में न जायं। देवता चरवाहे की तरह डंडा लेकर किसी की रक्षा नहीं करते। जिसकी बुद्धि

सही है, वही सुरक्षित है। मनुष्य जैसे–जैसे मन, वाणी तथा शरीर को सन्मार्ग में लगाता है, वैसे–वैसे वह जीवन में सुखी होता जाता है। कपटपूर्ण व्यवहार करने वाले को वेदमंत्र तार नहीं सकते। जैसे पंख निकलने पर पक्षी के बच्चे घोंसला छोड़ देते हैं, वैसे कपटी को वेदमंत्र त्याग देते हैं। शराब–पान, कलह, वैर, भेद बुद्धि, राजा से वैर, विवाद और बुरे रास्ते छोड़ देना चाहिए। हस्तरेखा देखने वाले, व्यापार में चोरी करने वाले, जुआरी, वैद्य, शत्रु, मित्र और नाचने वाले को कभी भी गवाह न बनावे। आग लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्र बनाने वाला, चुगुलखोर, मित्रद्रोही, परस्त्रीगामी, शराबी, तीखे स्वभाव वाला, कौए की तरह कांय–कांय करने वाला, सच्चे ज्ञान की निंदा करने वाला तथा क्रूर की संगत त्याग देना चाहिए। तपाने पर स्वर्ण की, सदाचार से सत्पुरुष की, व्यवहार से श्रेष्ठ पुरुष की, भय के समय शूर की, आर्थिक कठिनाई आने पर धीर की, कठिन आपत्ति आने पर शत्रु और मित्र की परीक्षा होती है।

बुढ़ापा सुंदरता को, आशा धीरता को, मृत्यु प्राण को, असूया धर्माचरण को, क्रोध लक्ष्मी को, आचरणहीन की संगत सत्स्वभाव को, काम लज्जा को और अहंकार सर्वस्व को नष्ट कर देता है। सतकर्मों से लक्ष्मी पैदा होती है, बुद्धिमता से बढ़ती है, चतुरता से जड़ जमाती है और संयम से सुरक्षित रहती है। बुद्धि, सदाचारी परिवार में जन्म, दम, शास्त्र ज्ञान, पराक्रम, वाक्य–संयम, यथाशक्ति दान और कृतज्ञता मनुष्य के उत्तम आभूषण हैं। जिस समय राजा किसी का सत्कार करता है, वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। परसेवा, दान, शास्त्र–अध्ययन और सहनशीलता सज्जनों के लक्षण हैं। मन–इंद्रियों का निग्रह, सत्य, सरलता और विनम्रता संत के लक्षण हैं। यज्ञ, अध्ययन, दान और तप दंभी भी कर सकता है, परंतु सत्य, क्षमा, दया और निर्लोभता महात्मा में ही होते हैं। जिस सभा में बूढ़े नहीं वह सभा नहीं, जो धर्मयुत बात न कहे वह बूढ़ा नहीं, जिसमें सत्य नहीं वह धर्म नहीं और जो कपटपूर्ण हो वह धर्म नहीं। पापी दुख पाता है, पुण्यात्मा सुख। अतएव प्रशंसित व्यक्ति पाप न करे। बारंबार पाप कर्म करने से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। जिसकी बुद्धि नष्ट हो गयी, वह बराबर पाप करता है।

दिन भर वह काम करे जिससे रात में सुख से सोवे, आठ महीने वह काम करे जिससे चार महीने वर्षा के दिन सुख से कटें, जीवन की प्रथम अवस्था में वह काम करे जिससे बुढ़ापा सुख से कटे और जीवनपर्यंत वह काम करे जिससे सुख से मरे और मरने के बाद सुख से रहे। पचा हुआ अन्न प्रशंसनीय है और मन के सागर से पार गया हुआ साधक प्रशंसनीय है। अधर्म से प्राप्त हुए धन के

द्वारा जो दोष छिपाया जाता है, वह छिपता नहीं, अपितु नया दोष उत्पन्न होता है। मन-इंद्रियों पर विजयी शिष्य के शासक गुरु हैं, दुष्टों के शासक राजा हैं, और छिपे-छिपे पाप करने वालों के शासक यमराज (विश्वनियम) हैं। ऋषि, नदी, वंश और महात्माओं का उत्पत्ति स्थान नहीं जाना जा सकता। शूर, विद्वान और सेवापरायण मनुष्य पृथ्वी रूपी लता से सुवर्ण रूपी फूल का संचय करते हैं। विवेकपूर्वक किये गये काम श्रेष्ठ हैं, बाहुबल से किये गये काम मध्यम हैं, जंघा से किये गये काम अधम हैं और भार मानकर किये गये काम महा अधम हैं। राजन! आप दुर्योधन, शकुनि, दुःशासन तथा कर्ण पर राज्य का दायित्व रखकर कैसे उन्नति चाहते हैं? पांडव आपको पिता मानते हैं, आप भी उनको पुत्रवत मानकर उनका अधिकार दें (अध्याय)।

धैर्य, मनोनिग्रह और सत्य का पालन कर्तव्य है। मन की सारी ग्रंथि खोलकर प्रिय और अप्रिय सबको अपने आत्मा के समान समझे। गाली पाकर गाली न दे। न दूसरों को गाली दे, न उनका अपमान करे, अहंकार छोड़े, कटु न बोले। रूखी बात दुखदायी होती है, इसलिए रूखी बात न बोले। वह महा दरिद्र है जो मीठे वचन भी नहीं दे सकता। स्वयं किसी के कठोर वचन सह ले, इससे अपना तप पुष्ट होता है। बुरी संगत न करे, मार खाकर भी अपराधी को न मारे तो वह विश्वविजयी होता है। न बोलना अच्छा है। सत्य बोलना अच्छा है। सत्य के साथ प्रिय बोलना तथा प्रिय के साथ धर्मयुत बोलना उत्तम है। मनुष्य जिन-जिन विषयों से मन हटाता है उनसे मुक्त हो जाता है। जो सब तरफ से मन हटा लेता है, वह पूरा मुक्त हो जाता है। उसको कोई दुख नहीं। जो जीत-हार, निंदा-प्रशंसा में समान भाव से रहता है, वह हर्ष-शोक से पार होता है। जो सबका हितचिंतक, सत्यवादी, इंद्रियजित और कोमल स्वभाव का है वह प्रशंसनीय है।

तृण का आसन, पृथ्वी, जल और मीठी वाणी, सज्जनों के घर में इन चारों की कमी नहीं रहती। रथ छोटा होने पर भारी भार ढोता है, किंतु बड़ी लकड़ी भार नहीं ढो सकती। इसी प्रकार उत्तम मनुष्य ही प्रतिकूलता सहकर दायित्व का भार ढो सकते हैं, छिछिले लोग नहीं। जिसके क्रोध से भयभीत होना पड़े और शंकित होकर सेवा करना पड़े वह मित्र नहीं है। मित्र वह है जिस पर पिता की तरह विश्वास किया जा सके, अन्य लोग साथी मात्र हैं। जिसके साथ पहले से कोई संबंध न होने पर भी जो मित्रता का बरताव करता है, वही मित्र है, वही सहारा है। जो चंचल मन का है, जो वृद्धों की सेवा नहीं करता, वह अनिश्चित बुद्धि का है। जैसे सूखे तालाब पर पक्षी मड़लाकर उड़ जाते हैं, वैसे जो चंचल मन का, अज्ञानी तथा इंद्रिय-लंपट है, उसे लक्ष्मी त्याग देती है। मित्रों से

सत्कार पाकर उनका कृतज्ञ होना चाहिए। मानसिक संताप से रूप, शक्ति तथा ज्ञान नष्ट होते हैं और रोग उत्पन्न होते हैं। शोक करने से अभीष्ट वस्तु नहीं मिलती। इससे तो शत्रु प्रसन्न होते हैं और अपना बल नष्ट होता है। बार–बार मरना–जन्मना, क्षय, बुद्धि का द्वंद्व सहना, याचना करना, देना, शोक करना तथा दूसरे द्वारा शोक किया जाना, सुख–दुख, उत्पत्ति–विनाश, लाभ–हानि, जीवन–मरण, यही संसार का प्रवाह है। विवेकवान इनको लेकर हर्ष–शोक नहीं करते।

विद्या, तप, मन–इंद्रिय–निग्रह तथा लोभ–त्याग यही शांति के साधन हैं। विवेक से भय दूर होता है, सहनशीलता से महत्पद की प्राप्ति होती है, गुरुसेवा से ज्ञान और योग से शांति मिलती है। मोक्ष की इच्छा वाले साधक दान और वेद के पुण्य का सहारा नहीं लेते। वे तो राग–द्वेष त्यागकर निष्काम भाव से संसार में विचरते हैं। आपस में फूट रखने वाले अच्छे बिस्तर पर भी नींद नहीं ले पाते। उन्हें न स्त्रियों से सुख मिल सकता है और न सूत–मागधों की स्तुति द्वारा सुख मिल सकता है। वे गौरव, सुख और शांति से वंचित रहते हैं। उनको अच्छी राय अच्छी नहीं लगती। उनका केवल विनाश ही होता है। पहले द्रौपदी को जीती गयी देखकर मैंने आपसे कहा था कि दुर्योधन को जुआ खेल से रोकिए। विद्वान जन इस प्रवंचना को मना करते हैं, परंतु आपने मेरी बात नहीं मानी। वह शक्ति कैसी जिसका कोमल स्वभाव वाले सज्जन के साथ विरोध हो। क्रूरतापूर्वक पैदा की हुई संपत्ति शीघ्र नष्ट होती है। जो धन कोमल व्यवहार से बढ़ाया जाता है वह पुत्र–पौत्रों तक स्थिर रहता है। राजन! आपके पुत्र पांडवों की रक्षा करें, पांडव आपके पुत्रों की रक्षा करें। सभी कौरव एक दूसरे के शत्रु को शत्रु तथा मित्र को मित्र समझें। सबका एक ही कर्तव्य हो। सब सुखी होकर जीवन व्यतीत करें। राजन! आप ही कौरव–वंश के स्तंभ हैं। पांडवों का आप पालन करें। वे आपकी असावधानी से बहुत कष्ट पा चुके हैं। अब आप उनकी रक्षा करके सुयश के भागी हों। आप पांडवों से संधि कर लें। इससे शत्रु आपकी निंदा नहीं कर सकेंगे। पांडव सत्य पर स्थिर हैं। अब आप अपने पुत्र को सम्हालिए (अध्याय)।

शासन के अयोग्य व्यक्ति पर शासन करना, मर्यादा त्याग में संतोष मानना, आचरणहीन की सेवा करना, आत्मप्रशंसा करना, बलवान से वैर करना, श्रद्धाहीन को उपदेश करना, निषिद्ध वस्तु की इच्छा करना, पुत्रवधू से सहवास करना, परस्त्रीगमन, किसी से कोई वस्तु लेकर पीछे 'याद नहीं है' कहकर बात को दबाना, दान देकर अपनी प्रशंसा करना और असत्य को सत्य सिद्ध करने का प्रयास करना–ये सब अपने को नरक में ले जाने के साधन हैं। अत्यंत

अभिमान, बहुत बोलना, त्याग का अभाव, क्रोध, स्वार्थपरता तथा मित्रद्रोह पतन के पथ हैं। मीठी बात कहने-सुनने वाले तो मिल जाते हैं, परंतु कल्याणकारी बात कहने और सुनने वाले दुर्लभ हैं। कुल की रक्षा के लिए एक मनुष्य का, गांव की रक्षा के लिए कुल का, देश की रक्षा के लिए गांव का और आत्मा के कल्याण के लिए सर्वस्व का त्याग करना चाहिए।

अहंकारशून्य, वीर, शीघ्र काम पूरा करने वाला, दयालु, पवित्र हृदय, बहकावे में न आने वाला, नीरोग और उदार वचन वाला व्यक्ति दूत बनाने के योग्य होता है। कम खाने से आरोग्य, आयु, शक्ति और सुख मिलते हैं। अकर्मण्य, बहुत खाने वाले, सबसे वैर करने वाले, मायावी, क्रूर, देश-काल के ज्ञान से हीन और निंदित वेष धारण करने वाले की संगति न करे। क्लेशप्रद कर्म करने वाले, प्रमादी, असत्य बोलने वाले, अस्थिर भक्ति वाले, स्नेहरहित तथा अपने को चतुर मानने वाले की संगत न करे। सहायकों से धन मिलता है और सहायक धन चाहते हैं, यह ध्यान में रखकर सहायकों की धन से सेवा करे। बाहुबल, धनबल, मंत्रीबल, कुटुंबबल और बुद्धिबल से सेवा करे। सर्प, अग्नि, सिंह और अपने कुल में उत्पन्न व्यक्ति का अनादर न करे। काठ में अग्नि रहती है, वैसे कुल में अग्नि रहती है, अतएव अपने कुल को सम्हालकर रखे।

क्रोध न करने वाला, मिट्टी, पत्थर तथा स्वर्ण को समान समझने वाला, शोक-रहित, संधि-विग्रह रहित, निंदा-प्रशंसा से शून्य, प्रिय-अप्रिय का त्यागी तथा उदासीन व्यक्ति भिक्षु (संत) है। जो मित्र न हो, मित्र होने पर समझदार न हो, समझदार होने पर मन को वश में न रखता हो, वह गुप्त मंत्रणा जानने योग्य नहीं है। आवश्यक काम करना, अधिक में हाथ न डालना पांडित्य है। अधिक में हाथ डालना झगड़ा मोल लेना है।

धृतराष्ट्र कहते हैं कि जैसे कठपुतली सूत्र में बंधी सूत्रधार की प्रेरणा से नाचती है। वह स्वतंत्र नहीं है, वैसे मनुष्य स्वतंत्र नहीं है। वह विधाता के कर्म विधान में बंधा नाच रहा है। अतएव तुम कहते चलो और मैं धैर्य धारणकर सुनता रहूंगा।

विदुर ने कहा-वैर हो जाने से अच्छा आदमी बुरा लगता है और मोह होने से बुरा भी अच्छा लगता है। राजन! दुर्योधन के जन्म लेते ही मैंने कहा था कि इस एक पुत्र को आप त्याग दें, तो सबकी रक्षा हो जायगी, परंतु आपने मेरी बात नहीं मानी। जिस लाभ में भयंकर हानि हो वह लाभ नहीं। वह हानि हानि नहीं जिसके परिणाम में लाभ हो। कुछ लोग गुण से धनी होते हैं, कुछ लोग धन से। जो धन से धनी होने पर भी सद्‌गुण-हीन है, उसे आप त्याग दें।

धृतराष्ट्र ने कहा–तुम जो कुछ कह रहे हो वह सत्य है। धर्म की विजय होती है, तो भी मैं अपने पुत्र का त्याग नहीं कर सकता।

विदुर ने कहा–राजन! आप मुझे अपना हितकारी समझें। कल्याण चाहने वाले को अपने जाति-भाइयों से विरोध नहीं करना चाहिए। जाति-भाइयों के साथ भोजन, बातचीत एवं प्रेम व्यवहार करना चाहिए। संसार में जाति-भाई ही तारते हैं ओर वे ही डुबाते हैं। आप पांडवों की रक्षा करें, तो आप स्वयं सुरक्षित हो जायंगे। राजन! आप पांडवों को अथवा अपने बंधुओं एवं पुत्रों को मारे गये सुनकर पीछे संताप करेंगे। अतएव इस पर पहले विचार कर लीजिए। जीवन क्षणिक है, जिस काम को करने से पीछे बिस्तर पर बैठकर पछताना पड़े, वह काम नहीं करना चाहिए। दुर्योधन ने पहले पांडवों के साथ दुर्व्यवहार किया है, किंतु राजन! आप श्रेष्ठ हैं। आज आप उस दोष को धोकर मेलमिलाप कर लें। यदि आप युधिष्ठिर को उनका राज्य दे देंगे, तो आपके ऊपर लगा कलंक धुल जायगा।

मर्यादा-पालक, धर्मपरायण, लज्जाशील तथा कोमल स्वभाव वाला मनुष्य सैकड़ों कुलीनों से उच्च है। इस पृथ्वी पर जितने धान, जौ, सोना, पशु तथा स्त्रियां हैं, वे एक मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं हैं। धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। ऐसा विचारकर धन के मोह में न पड़ें। यदि आपको अपने पुत्रों तथा पांडवों में समान भाव है, तो आप दोनों के साथ समान व्यवहार कीजिए।

धृतराष्ट्र ने कहा–विदुर! जो तुम नित्य मुझे उपदेश सुनाते हो, वह सत्य है। मेरा मन भी वैसा ही करने का सोचता है। मैं पांडवों का हित करना चाहता हूं, परंतु दुर्योधन जब सामने आता है, तब मेरी बुद्धि पलट जाती है। प्रारब्ध का उल्लंघन कोई नहीं कर सकता। मैं तो प्रारब्ध को ही अटल मानता हूं। उसके सामने पुरुषार्थ व्यर्थ है (अध्याय -)।

मीमांसा

धृतराष्ट्र नियतिवादी, भाग्यवादी एवं प्रारब्धवादी थे। दूसरी तरफ पुत्र-मोह। इन दोनों ने उन्हें डुबा दिया। नियति, भाग्य एवं प्रारब्ध का अपना महत्त्व है; परंतु ये सब जीव के पुरुषार्थ एवं परिश्रम के ही फल हैं। प्रारब्ध की अपनी मर्यादा है, पुरुषार्थ करना मनुष्य का कर्तव्य है। प्रारब्ध पुरुषार्थ का ही फल है।

तैंतीसवें से चालीसवें अध्याय तक पांच सौ अट्ठासी श्लोकों में विदुर के उपदेश हैं।

. सनत्सुजात का आत्मज्ञान संबंधी उपदेश

विदुर ने कहा–राजन! सनत्सुजात नाम के प्राचीन ऋषि ने कहा है कि 'मृत्यु है ही नहीं– *मृत्युर्नास्तीति–मृत्युः–न–अस्ति–इति'* (उद्योग पर्व ,)। वे श्रेष्ठ ज्ञानी हैं। वे ही आपको उसका उपदेश करेंगे। धृतराष्ट्र ने कहा–विदुर! क्या तुम उस तत्त्व को नहीं जानते हो जो उसे बताने के लिए ऋषि को बुलाना पड़ेगा? तुम यदि जानते हो तो बताओ। मैं तो तुम्हीं से सुनना चाहता हूं। विदुर ने कहा–मैं शूद्रा–माता से पैदा हुआ हूं, इसलिए मैं ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने का अधिकारी नहीं हूं। ऐसा कहने के बाद विदुर ने सनत्सुजात का स्मरण किया। सनत्सुजात आये। आदर–सत्कार के बाद विदुर ने सनत्सुजात से कहा–राजा धृतराष्ट्र के मन में कुछ शंकाएं हैं। आपके द्वारा उनका समाधान हो जाने पर राजा सब दुखों से मुक्त हो जायंगे और लाभ–हानि, प्रिय–अप्रिय, जरा–मृत्यु, भय–अमर्ष, भूख–प्यास, मद–ऐश्वर्य, चिंता–आलस्य, काम–क्रोध और अवनति–उन्नति से पार हो जायंगे।

धृतराष्ट्र ने पूछा–सनत्सुजात जी! आपका सिद्धांत है कि मृत्यु है ही नहीं। दूसरी तरफ सुनता हूं कि देवता और दैत्यों ने मृत्यु से पार जाने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इन दोनों में कौन बात सत्य है?

सनत्सुजात ने कहा–मृत्यु है, और ब्रह्मचर्य पालन से वह नष्ट हो जाती है। दूसरा पक्ष है कि मृत्यु है ही नहीं। ये दोनों पक्ष सत्य हैं। कुछ विद्वान मोह–वश मृत्यु की सत्ता स्वीकार करते हैं, किंतु मैं कहता हूं कि मृत्यु है नहीं। वस्तुतः प्रमाद ही मृत्यु है और अ–प्रमाद अमृत है। प्रमाद है देहाभिमान और अ–प्रमाद है आत्मज्ञान में निरंतर जागृति, जिससे साधक ब्रह्मभूत हो जाता है, आत्मलीन हो जाता है। मृत्यु कोई बाघ–सिंह नहीं है जो प्राणी को खा जाय।

कुछ लोग प्रमाद के अलावा 'यम' को मृत्यु कहते हैं। यम वासना है और वह प्रमाद ही है। उसी के अधीन हो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार के वशीभूत होकर देहाभिमान के पथ पर चलता है और आत्म–साक्षात्कार नहीं कर पाता है। मनुष्य विषयों के मोह में पड़कर अहंकार के अधीन हो जन्म–मरण के प्रवाह में बहता है। शरीर छूटने को मृत्यु होना कहा जाता है। वस्तुतः विषय–चिंतन और विषय–भोग जीव को भटकाते हैं।

जिसने इन झूठे विषयों का पूर्णतया त्याग कर दिया है और निरंतर आत्मा में रमता है, उसे कहीं भटकना ही नहीं है। सभी कामनाओं का त्यागी मनुष्य मृत्यु से पार होता है। उसके लिए मृत्यु है ही नहीं। काम ही मदिरा है। इसको पीकर

मनुष्य उन्मत्त है। जो विषय–मोह से सर्वथा पार है, उसका घास का बना बाघ क्या बिगाड़ सकता है *"किं वै मृत्युस्तार्ण इवास्य व्याघ्रः* (उद्योग पर्व ,)?" अंतरात्मा के लिए विषय–मोह ही मृत्यु है, अतएव उसे सर्वथा त्याग देने पर मृत्यु है ही नहीं। आत्मलीन मनुष्य मृत्यु से कभी नहीं डरता।

पुण्य कर्म करके परलोक में सुख पाने की लालसा अज्ञान ही है। निष्काम मनुष्य सब कुछ की इच्छा छोड़कर निरंतर आत्मलीन रहता है। सकाम कर्म करके सुख–दुख के झमेले में पड़े जीव जन्म–मरण के दुखद चक्कर में घूमते हैं, किंतु सारी कामनाओं को छोड़ देने वाला मनुष्य यहीं कृतार्थ हो जाता है। निष्काम पुरुष जीवन–निर्वाह की वस्तुओं को लेकर स्वरूपबोधपूर्वक जीवन–यात्रा करे, भूख–प्यास से अपने को कष्ट न दे, अपनी विशेषता का प्रकाशन न करे, सदैव सब जगह विनम्र भाव से रहे। अपने प्रभाव का प्रकाशन करना अपना ओछापन है। अपने अद्वय शुद्ध चेतन स्वरूप के ज्ञान में रमने वाला साधक अपने माने गये भौतिक नाम–रूप का प्रकाशन करके अपना पतन नहीं करना चाहेगा।

जो कर्तव्य–पालन करने में थकता नहीं, सबसे निष्काम, उपद्रव रहित और आत्मसंतुष्ट है, वह अपने नाम–रूप का विज्ञापन नहीं करता। जो बाहर से दरिद्र, किंतु भीतर से धनी है, आत्मतृप्त है, वह कहीं विचलित नहीं होता। वह अजेय है। वह सम्मान पाकर भी अभिमान नहीं करता, किसी सम्मानित को देखकर ईर्ष्या नहीं करता। मान और मौन एक साथ नहीं रहते। मान–अभिमान से भरा मन मौन–शांत नहीं हो सकता और मौन मन, शांत मन मान–अभिमान–शून्य होता है। ऐश्वर्य सुख का घर माना गया है, परंतु वह लुटेरा ही है। ब्राह्मी ऐश्वर्य–आत्म–संतोष–धन ही परम शांति का कारण है। इसके लिए सत्य, सरलता, लज्जा, दम, शौच और विद्या के पथ पर चलना चाहिए।

धृतराष्ट्र ने पूछा–विद्वान! मौन क्या है? सनत्सुजात ने कहा–जहां मन के सहित वाणी रूपी वेद नहीं पहुंच पाते, उस आत्मशांति का नाम मौन है। जहां से लौकिक और वैदिक वाणी प्रकट होती है, उस आत्मा में तन्मय होने पर उसका साक्षात्कार होता है। याद रखो, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद आदि वेद पापकर्म करने वाले की रक्षा नहीं कर सकते। जो कपटपूर्वक धर्माचरण करता है, उस पापाचारी का वेद उद्धार नहीं कर सकते। जैसे पंख उगने पर पक्षी अपना घोंसला छोड़ देते हैं, वैसे वेद भी पापी का साथ छोड़ देते हैं।

धृतराष्ट्र ने पूछा–यदि सदाचार के बिना वेद रक्षा नहीं कर सकते, तो वेद ज्ञाता ब्राह्मणों के पवित्र होने का प्रलाप चिरकाल से क्यों चला आया है?

सनत्सुजात ने कहा–मनुष्य के अंतरात्मा से ही वेदादि वाणी बनी है। उसका अध्ययन-मनन करके आचरण की पवित्रता करने से मनुष्य पवित्र होता है, केवल वेद-वाणी रटने से नहीं। सकामी पुण्यात्मा जन्म-मरण में भटकते हैं और निष्कामी पुण्यात्मा स्वरूपज्ञान में स्थिर होकर यहीं परम शांति को प्राप्त हो जाते हैं। तप से तथा मन-वाणी-शरीर की पूर्ण शुद्धि से ही मोक्ष-फल मिलता है जो निर्भय पद है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, कामना, निर्दयता, असूया, अभिमान, शोक, स्पृहा, ईर्ष्या और निंदा–ये बारह दोष त्याग देना चाहिए। ये दोष मनुष्य पर वैसे आक्रमण करते हैं जैसे बधिक जानवर पर। आत्मप्रशंसक, लोलुप, असहनशील, क्रोधी, चंचल और आश्रितों की रक्षा न करने वाले–ये छह पापी हैं। भोगी, कलहप्रिय, अभिमानी, दान देकर पछताने वाले, कृपण, अर्थ और काम के प्रशंसक तथा स्त्रियों से द्वेष करने वाले–ये सात और पहले के छह–कुल तेरह प्रकार के मनुष्य क्रूर-समुदाय के सदस्य हैं।

धर्म, सत्य, इंद्रिय-निग्रह, तप, ईर्ष्या का अभाव, लज्जा, सहनशीलता, परदोष दर्शन का अभाव, सेवा, दान, धैर्य, आत्मज्ञान–ये सद्‌गुण उच्चता के लक्षण हैं। जो इन सद्‌गुणों से संपन्न है वही सदैव सुखी रहता है। दम, त्याग और अ-प्रमाद में अमृत का वास है। इन गुणों के मुख सत्स्वरूप आत्मा की तरफ हैं। दम अठारह गुणों वाला है। कर्तव्य-अकर्तव्य के विपरीत धारणा, असत्य भाषण, गुणों में दोष खोजना, विषयासक्ति, धनासक्ति, भोगों की इच्छा, क्रोध, शोक, तृष्णा, लोभ, चुगुली करने की आदत, डाह, हिंसा, संताप, ज्ञान में अरुचि, कर्तव्य की विस्मृति, बकबक करने की आदत तथा अपने को बड़ा समझना; जो इन दोषों से दूर है, वही संत है, दम को धारण करने वाला है। काम का त्यागी विश्वविजयी है।

धन पाकर न फूलना, परसेवा में धन लगाना, वैराग्य से रहकर काम-वासना का त्याग करना चाहिए। त्याग में परम सुख है, भोग दुख में गिराता है। अप्रिय घटना में दुखी न हो। अभीष्ट पदार्थ की याचना न करे। दुखी की सहायता करे। इन सद्‌गुणों से चलकर प्रमाद से रहित रहे। अ-प्रमाद के आठ गुण हैं–सत्य, ध्यान, आत्मबोध, समाधान, वैराग्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। पांच ज्ञानेंद्रियों और छठें मन को निर्विषय रखे, भूत की चिंता और भविष्य की आशा न करे। तुम सत्स्वरूप आत्मा में स्थित होओ। सत्य में संपूर्ण लोक प्रतिष्ठित है। दम, त्याग और अ-प्रमाद ही आत्मस्थिति प्राप्त कराने वाले हैं। सत्य में ही अमृत प्रतिष्ठित है। दोषों को दूर कर ही तप और व्रत का आचरण करना चाहिए

धृतराष्ट्र ने पूछा–कुछ लोग इतिहास–पुराण पढ़कर अपने को वेद ज्ञाता मानते हैं और वेदों के द्वारा कुछ लोगों के नाम लिए जाते हैं; जैसे चतुर्वेदी, त्रिवेदी, द्विवेदी, एकवेदी तथा अनृच (अ–वेदपाठी)। इनमें से किसको ब्राह्मण माना जाय?

सनत्सुजात ने कहा–वेद तो एक ही है–आत्मज्ञान; उसके अज्ञान से नाना वेद बन गये हैं। सत्य एक आत्म–अस्तित्व है, उसमें कोई बिरला स्थित होता है। आत्मज्ञान विहीन लोग अहंकार गांठ बैठते हैं कि हम विद्वान हैं। ऐसे लोगों की दान, अध्ययन, यज्ञ आदि में धन–लोभ से प्रवृत्ति होती है। सत्स्वरूप आत्मा से पतित लोगों की यही दशा होती है। वे यज्ञ–याग के विस्तार में ही पड़े रहते हैं। सत्स्वरूप आत्मा ही सर्वोच्च है। आत्मज्ञान का फल प्रत्यक्ष आत्मशांति है और स्वर्गादि के लिए किये गये तप के फल परोक्ष एवं काल्पनिक हैं। अतएव हे राजन! केवल वेद–वेद कहकर बात बघारने वाले को ब्राह्मण न मान लें। वस्तुतः जो सत्स्वरूप आत्मा में स्थित है, वह ब्राह्मण है।

अथर्वा आदि ऋषियों ने जिनको पहले गाया है, उन छंदों को वेद कहते हैं। किंतु संपूर्ण वेदों का अध्ययन कर लेने पर भी जो आत्मतत्त्व को जानकर उसमें स्थित नहीं हुआ, वह वस्तुतः वेदों का विद्वान नहीं है। हे राजन! कोई बिरला वेदों के रहस्य को समझता है। "जो केवल वेदों के छंदों का विद्वान है, वह वेदों के द्वारा जानने योग्य आत्मा को नहीं जानता। वस्तुतः जो सत्स्वरूप आत्मा में स्थित है वह वेदों का विद्वान है।"[1]

द्वितीया के चंद्रमा को बताने के लिए जैसे पेड़ की डाली की तरफ संकेत किया जाता है, वैसे सत्स्वरूप आत्मा का बोध कराने के लिए वेद–वचनों का प्रयोग किया जाता है। मैं उसी को ब्राह्मण मानता हूं जिसके सारे संशय नष्ट हो गये हैं और दूसरे के संशय को भी अपने उपदेशों से नष्ट करता है। आत्मा की खोज के लिए पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा इन दिशाओं के कोणों में जाने की आवश्यकता नहीं है। इसी प्रकार दिग्विभाग से रहित प्रदेशों में भी जाने की आवश्यकता नहीं है। आत्मा की खोज अनात्म पदार्थों में किसी प्रकार भी न करे। वेद के वाक्यों में भी आत्मा की खोज न करे, अपितु मन–इंद्रियों के संयम द्वारा ही उस ज्ञान–विज्ञान के स्वामी का साक्षात करे। मन को अंतर्मुख कर आत्मा की उपासना करे, मन से भी कोई चेष्टा न करे। उस विख्यात आत्मा

---

1. **यो वेद वेदान् न स वेद वेद्यम्।**
   सत्ये स्थितो यस्तु स वेद वेद्यम् उद्योगपर्व ,

रूपी ब्रह्म की तुम भी उपासना करो। न कोई केवल बाहरी मौन से मुनि होता है और न जंगल में बसने से मुनि होता है; "किंतु जो अपने आत्मा के लक्षणों को जानता है, वह श्रेष्ठ मुनि कहलाता है–*स्वलक्षणं तु यो वेद स मुनिः श्रेष्ठ उच्यते* (उद्योग ,)।" "सभी अर्थों को व्याकृत (प्रकट) करने से ज्ञानी मनुष्य 'वैयाकरण' कहलाता है। ज्ञानी समस्त अर्थों का प्रकटीकरण करने वाला मूल है, इसलिए वही 'वैयाकरण' है। मनुष्य सारे संसार को देखने वाला होने से उसका प्रत्यक्षदर्शी है; परंतु जो सत्स्वरूप ब्रह्म में स्थित है वही विद्वान सर्वज्ञाता ब्राह्मण होता है।"[1] (अध्याय –)।

मीमांसा

ज्ञानी पंडितों ने कथा जोड़-जोड़कर ज्ञान की बातें भरी हैं, अन्यथा महाभारत राग-द्वेष तथा मारकाट की कहानी की पोथी बनकर रह जाती। आप पीछे विदुर के उपदेश पढ़ चुके हैं। विदुर ने सनत्सुजात का स्मरण किया और वे आ गये। सनत्सुजात सनत्कुमार ही हैं, और वे बहुत पुराने ऋषि हैं। वे धृतराष्ट्र के पास कैसे आ सकते हैं? और कोई जगत में विद्यमान भी हो, तो याद मात्र से कैसे आ सकता है। मोबाइल और हेलीकाप्टर का भी समय नहीं था। वस्तुतः विद्वान पंडित ने सनत्सुजात की कथा जोड़ी है।

लेखक-पंडित ने विदुर के मुख से यह कहलवाकर कि मैं शूद्रा के उदर से पैदा हूं, इसलिए ब्रह्मज्ञान देने का अधिकारी नहीं हूं, बड़ी असावधानी की है। पंडित पूरे महाभारत ग्रंथ को जिस वेदव्यास से जोड़ता है, वे धीवरी के बच्चे हैं और उनके पिता पराशर भंगिनि के बच्चे हैं। इसका भी ख्याल लेखक ने नहीं किया। सबके शरीर टट्टी-पेशाब से भरे होने से वे भंगी ही हैं, और सब शरीरों में आत्मा रूपी ब्रह्म बैठा है, इसलिए सब मनुष्य ब्राह्मण ही हैं। जिसमें भी ब्रह्मलीनता की पूर्ण स्थिति आ जाय, वह पूर्ण ब्राह्मण है।

छंदोविद्, वेदविद् और वेद्यविद्–तीन होते हैं। वेदमंत्रों के अंग-उपांग जानकर जो उनका पाठ करता है, वह छंदोविद् है; वेदमंत्रों के अर्थ को जानकर

---

1. **सर्वार्थानां व्याकरणाद् वैयाकरण उच्यते।**
तन्मूलतो व्याकरणं व्याकरोतीति तत् तथा
प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः।
सत्ये वै ब्राह्मणस्तिष्ठंस्तद् विद्वान् सर्वविद् भवेत्
(उद्योग पर्व, अध्याय , श्लोक –)

जो उनका व्याख्यान करता है वह वेदविद् है; और जो जानने योग्य आत्मा को जानकर उसमें स्थित होता है, वह वेद्यविद् है। वेद्य का अर्थ है जानने योग्य, वह है निज स्वरूप चेतन आत्मा। अतएव आत्मज्ञानी तथा आत्मलीन मनुष्य ही सच्चा वेदज्ञाता और सच्चा ज्ञानी है। यही ऋषि सनत्सुजात का उपदेश है।

. सनत्सुजात का ब्रह्मज्ञान–उपदेश

धृतराष्ट्र ने कहा–आप जिस ब्रह्मज्ञान का उपदेश कर रहे हैं, वह कामी मनुष्य के लिए दुर्लभ है। आप पुनः उसका उपदेश कीजिए। सनत्सुजात ने कहा–राजन! तुम प्रफुल्लित होकर जो बारंबार पूछते हो, इस तरह जल्दीबाजी में ब्रह्मज्ञान की उपलब्धि नहीं होती है। मन का आत्मलीन होना ब्रह्मविद्या है। यह स्थिति शुद्ध ब्रह्मचर्य पालन करने से आती है। जो सारी कामनाओं को जीत लेते हैं और सारे द्वंद्वों को निर्विकार भाव से सह लेते हैं, वे पवित्र रहनी में रहकर मूंज में से सींक निकाल लेने के समान विवेक द्वारा देह से आत्मा को पृथक कर इसी जीवन में परम शांति में स्थित हो जाते हैं।

शरीर के जन्मदाता माता–पिता हैं; परन्तु आत्मबोध के जन्मदाता सद्गुरु हैं। उनका बड़ा उपकार है; क्योंकि उनके उपदेशों का पालन करने से जीव भव–बंधनों से सदा के लिए मुक्त हो जाता है। शिष्य को चाहिए कि वह गुरु की सेवा करे, उनसे कभी द्रोह न करे, अभिमान न करे, क्रोध से दूर रहे। शिष्य गुरु की सेवा करे, उनसे विनयावत रहे। वह कभी न सोचे कि मैं गुरु का उपकार कर रहा हूं और मुंह से भी ऐसी बात न कहे। गुरु के उपदेश से, शास्त्र–अध्ययन से, संतों की संगत से तथा स्वयं के परिश्रम से ज्ञान की पूर्णता होती है। ब्रह्मचारी यम–नियमों का पालन करके सहनशीलता रूपी तप द्वारा पूरे जीवन को पवित्र कर लेता है और वह अबोध बालक की तरह राग–द्वेष से शून्य हो जाता है और जन्म–मृत्यु से पार हो जाता है। मोक्ष के लिए स्वरूपज्ञान के अलावा कोई मार्ग नहीं है। आत्मा सफेद, काला, लाल आदि नहीं है। वह तो शुद्ध चेतन मात्र है।

कोई दस लाख पंख लगाकर मन के वेग के अनुसार ही क्यों न उड़े, परंतु अंततः उसे हृदयस्थित अंतरात्मा रूपी परमात्मा में ही आना पड़ेगा। वहीं परम शांति मिलेगी। आत्मा का स्वरूप आंखों से नहीं दिखता। उसका पवित्र हृदय से ही अनुभव किया जा सकता है। जो विवेकवान सबका कल्याण चाहते हैं, जिनका मन कभी संतप्त नहीं होता और जो सबका राग त्याग देते हैं, वे यहीं मुक्त हो जाते हैं। वे अपनी निंदा सुनकर संतप्त नहीं होते। वे हर्ष और ग्लानि से पार हो जाते हैं (अध्याय –)।

मीमांसा

विदुर नीति आठ अध्यायों तथा करीब छह सौ श्लोकों में और सनत्सुजात का ब्रह्मज्ञान छह अध्यायों तथा करीब दौ सौ श्लोकों में, सब करीब आठ सौ श्लोकों की सामग्री के बाद संजय कौरवों की सभा में आकर युधिष्ठिर का संदेश बताते हैं। विदुर नीति तथा सनत्सुजात का ब्रह्मज्ञान मुख्य कथाप्रवाह को बाधित करते हैं, किंतु वे जीवन के लिए अमृत उपदेश देते हैं। रामायण हो या महाभारत, किस पात्र का कहा हुआ कितना सच अथवा झूठ है, इसकी न आज थाह मिल सकती है और न उसको जानने की आवश्यकता है। इनके वाक्य-वाक्य से हम कितनी प्रेरणा लेकर अपने जीवन में अमृत भर सकते हैं, इसी सूझ की आवश्यकता है। अपने पूर्वजों की गलतियों से प्रेरणा लें कि वैसी गलती हम न करें, अन्यथा हम भी दुखी होंगे; और उनकी अच्छाइयों से प्रेरणा लेकर अपने जीवन का सुधार करें।

. कौरव-सभा का झमेला

संध्याकाल में संजय युधिष्ठिर के पास से हस्तिनापुर आकर और धृतराष्ट्र से थोड़ी बात करके विश्राम करने चले गये थे और उन्होंने जाते समय कहा था कि कल कौरवों की सभा में पांडवों के संदेश सुनाऊंगा। इसे सुनकर धृतराष्ट्र को बेचैनी हो गयी थी कि पता नहीं कल संजय क्या सुनायेगा। अतएव उन्हें नींद नहीं आ रही थी, इसलिए उन्होंने विदुर को बुलाया और विदुर ने करीब छह सौ श्लोकों में उपदेश दिया। इसके बाद विदुर ने सनत्सुजात को बुलाकर उनसे करीब दो सौ श्लोकों में ब्रह्मज्ञान का उपदेश दिलाया। इस तरह राजा धृतराष्ट्र की पूरी रात प्रजागरण में कट गयी, इसलिए इस अवांतर पर्व का नाम प्रजागरण पर्व हो गया।

अब यान[1]संधि पर्व अवांतर पर्व आया जो उद्योग पर्व का सैंतालीस ( )वां अध्याय है। इसके आरंभ में आता है-वैशम्पायन जी कहते हैं-जनमेजय! इस प्रकार महर्षि सनत्कुमार और विदुर के साथ बातचीत करते हुए राजा धृतराष्ट्र की सारी रात बीत गयी। प्रातःकाल होते ही कौरवों की सभा सजी और लोग बड़े हर्ष के साथ संजय द्वारा पांडवों के संदेश सुनने के लिए सभा में आये।

संजय ने सभा में कहा-आपको विदित है कि मैं पांडवों की सभा से कल लौटा हूं। पांडव लोग अवस्था के अनुसार कौरव-परिवार को प्रणाम, आशीर्वाद

---

1. **यान-आक्रमण; संधि-समझौता।**

तथा प्रेम–मुहब्बत एवं कुशल–मंगल की बात कहे हैं। राजा धृतराष्ट्र जिस तरह पांडवों के लिए अपना संदेश दिये थे, उसी तरह मैंने वहां उनको कह सुनाया। अब आप मेरे द्वारा उन बातों को ध्यान देकर सुनें जो श्रीकृष्ण और अर्जुन ने कहा है।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सामने कहा है कि यदि दुर्योधन युधिष्ठिर का राज्य उन्हें नहीं लौटाते हैं, तो धृतराष्ट्र के पुत्रों को विनाश के मुख में जाना है। इसके बाद अर्जुन द्वारा पांडव पक्ष के एक–एक योद्धा का नाम लेकर उनके युद्ध कौशल का वर्णन किया गया है। इस अड़तालीस ( )वें अध्याय में एक सौ नौ ( ) श्लोक आये हैं।

इसके बाद उनचास ( )वें अध्याय में भीष्म दुर्योधन को पांडवों से संधि करने की राय देते है और साथ–साथ श्रीकृष्ण और अर्जुन की नर–नारायण के रूप में महिमा बताते हैं। इस पर भीष्म ने एक चुटकुला सुनाया–एक समय की बात है कि बृहस्पति और शुक्राचार्य ब्रह्माजी की सेवा में खड़े थे। इसके साथ ब्रह्माजी का अपना दल–बल तो था ही। इतने में पुरातन ऋषि नर और नारायण आ निकले और वे अपना तेज बिखेरते हुए पास से ही निकल गये। बृहस्पति ने ब्रह्माजी से पूछा–पितामह! ये दोनों कौन हैं, जिन्होंने आपके पास से निकलते हुए आपका दंड–प्रणाम भी नहीं किया? ब्रह्माजी ने कहा–ये दोनों नर और नारायण हैं। ये दोनों पृथ्वी लोक से ब्रह्मलोक में आये हैं। ये असुरों का विनाश करने के लिए अवतरित हुए हैं। "मनुष्य लोक में इन्हें इंद्र सहित समस्त देवता और दैत्य भी नहीं जीत सकते हैं। ये श्रीकृष्ण नारायण हैं और अर्जुन नर माने जाते हैं। नर तथा नारायण दोनों एक ही सत्ता हैं, परंतु लोक–कल्याण के लिए दो शरीर में प्रकट हुए हैं।"[1] लोकहित के लिए जब जहां युद्ध का अवसर आता है तब ये अवतार लेकर दुष्टों का संहार करते हैं।

भीष्म कहते हैं–बेटा दुर्योधन! तुम पांडवों से संधि कर लो, अन्यथा श्रीकृष्ण और अर्जुन का शस्त्र–प्रहार जब तुम्हारे दल पर होगा, तब तुम्हें मेरी बातें याद आयेंगी। यदि तुमने मेरी बात नहीं मानी तो कौरवों का विनाश रखा–रखाया है। तुम कर्ण, शकुनि और दुःशासन की खोटी बुद्धि का अनुसरण न करो।

कर्ण ने कहा–पितामह! आपने जो मेरे लिए कटु शब्द कहा है, यह उचित

---

1. **अजेयौ मानुषे लोके सेन्द्रैरपि सुरासुरैः।**
   एष नारायणः कृष्णः फाल्गुनश्च नरः स्मृतः।
   नारायणो नरश्चैव सत्त्वमेकं द्विधा कृतम् उद्योग० ,

नहीं है। आपके मुख से ऐसा नहीं निकलना चाहिए। मेरा कौन-सा दुराचार है जो आप मुझे कटु कहते रहते हैं। भीष्म ने पुनः कर्ण को फटकारा और पांडवों से संधि करने की बात कही। द्रोणाचार्य ने भी भीष्म की बातों की प्रशंसा की और पांडवों से संधि करने की राय दी।

इसके बाद संजय द्वारा युधिष्ठिर के प्रधान सहायकों का वर्णन चलता है। वर्णन करते-करते वे शोक से व्यथित होकर अचेत हो जाते हैं। तब विदुर धृतराष्ट्र को बताते हैं कि संजय अचेत हो गये हैं। संजय पुनः चेत में आते हैं और युद्ध में कौरवों के विनाश की संभावना का वर्णन करते हैं।

आगे इक्कानबे ( )वें अध्याय में धृतराष्ट्र भीम के बल-पराक्रम की याद कर विलाप करते हैं और कहते हैं कि भीम अकेले कौरवों का विनाश करने में समर्थ हैं। फिर अर्जुन के द्वारा प्राप्त होने वाले भय का वर्णन करते हैं। इसके बाद तिरपन ( )वें अध्याय में धृतराष्ट्र अपने कौरव-परिवार को पांडवों से संधि करने की राय देते हैं। संजय पुनः धृतराष्ट्र को सावधान करते हैं कि वे दुर्योधन पर शासन करके उनको सम्हालें।

इसके बाद दुर्योधन धृतराष्ट्र को धैर्य देते हैं और कहते हैं कि आप घबरायें नहीं। श्रीकृष्ण हम सबका विनाश कर कौरवों का पूरा राज्य पांडवों को सौंपना चाहते हैं। वे आपको और विदुर को छोड़कर सब कौरवों को मार डालने की योजना बनाये हैं। ऐसी अवस्था में हमें युद्ध से पीठ दिखाना ठीक नहीं लगता। आप घबराते क्यों हैं? अर्जुन और भीम के मारे जाने के बाद पांडव-दल में क्या दम रह जायगा? पांडवों के दल में सात योद्धा कुल हैं—पांचों भाई पांडव, धृष्टद्युम्न और सात्यकि; किंतु हम लोगों के पक्ष में—भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, वैकर्तन, कर्ण, सोमदत्त, बाह्लिक भगदत्त, शल्य, विंद-अनविंद, जयद्रथ, दुःशासन, दुर्मुख, दुःसह, श्रुतायु, चित्रसेन, पुरुमित्र, विविंशति, भूरिश्रवा, विकर्ण हैं। हमारी सेना ग्यारह अक्षौहिणी है, और शत्रुपक्ष में कुल सात अक्षौहिणी। आप घबरायें नहीं, हमारा बल अधिक है। युधिष्ठिर हमारे बल और सेना से इतने भयभीत हो गये हैं कि राजधानी और नगर की बात छोड़कर केवल पांच गांव मांग रहे हैं (उद्योग० ,)।

संजय पांडवों की युद्ध-तैयारी का वर्णन करते हैं। धृतराष्ट्र पुनः अधीर होकर विलाप करते हैं। दुर्योधन पुनः अपने बल का वर्णन करते हैं। धृतराष्ट्र दुर्योधन की बतबढ़ी पर विश्वास नहीं करते हैं। वे पुनः दुर्योधन को समझाते हैं और कहते हैं कि तुम पांडवों को उनका राज्य लौटा दो। तुम्हारे लिए आधा राज्य काफी है। दुर्योधन कहते हैं—मैं जीवन, राज्य, धन सब कुछ छोड़ सकता हूं, परंतु पांडवों को उतनी भी जमीन नहीं दे सकता जितनी तीखी सूई से विंध

सकती है (उद्योग पर्व , –)।

दुर्योधन की उक्त बातें सुनकर धृतराष्ट्र हतप्रभ हो जाते हैं। वे कौरवों की सभा को संबोधित कर कहते हैं–दुर्योधन को मैंने त्याग दिया है। जो लोग उसका अनुसरण करेंगे, उनके लिए मैं शोक करता हूं। धृतराष्ट्र पुनः संजय से पूछते हैं कि श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अंतःपुर में जो कुछ कहा है उसे सुनाओ। संजय ने कहा–श्रीकृष्ण ने कहा है कि कौरव लोग जो कुछ यज्ञ–याग करना हो, दान–पुण्य करना और भोग–विलास करना हो, वह कर लें, अब उनके ऊपर बड़ा भय उत्पन्न हुआ है। जब कौरव सभा में द्रौपदी का वस्त्र खींचा जा रहा था, उस समय मैं हस्तिनापुर से बहुत दूर था। उसमें द्रौपदी ने दुखी होकर 'गोविंद' कहकर मुझे पुकारा था, उसका मेरे ऊपर बहुत बड़ा ऋण है। वह ऋण बढ़ता जा रहा है। अर्जुन अजेय हैं, मैं उनका सहायक हूं। अर्जुन ने भी श्रीकृष्ण की इस बात का अनुमोदन किया था।

दुर्योधन और कर्ण बारंबार अपने बल की प्रशंसा करते हैं। भीष्म उस पर आक्षेप करते हैं। कर्ण सभा छोड़कर अपने निवास पर चले जाते हैं। भीष्म पुनः कर्ण की भर्त्सना करते हैं। दुर्योधन कहते हैं कि हम बलवान हैं। विदुर उनको दम की महिमा बताते हैं। भला, ऐसे बढ़े–चढ़े अहंकार और क्रोध के आवेश में दम एवं शांति की बात कहां बेध सकती थी? विदुर एक चुटकुला सुनाते हैं– बहेलिए के जाल में दो पक्षी फंस गये जो सदैव साथ में रहते थे। वे दोनों उस जाल को लेकर आकाश में उड़ गये। बहेलिया उधर दौड़ता रहा जिधर वे दोनों पक्षी जाल लेकर उड़ रहे थे। एक मुनि जंगल में बैठे थे। उन्होंने बहेलिए से पूछा–पक्षी तुम्हारा जाल लिए आकाश में उड़ रहे हैं, तुम धरती पर दौड़कर उनका क्या कर सकते हो? बहेलिए ने कहा–जहां ये पक्षी आपस में झगड़ेंगे, वहां ये मेरे वश में आ जायंगे। कुछ देर में यही हुआ, दोनों पक्षी झगड़ने लगे, अतएव वे जाल सहित धरती पर आ गये और बहेलिए ने उन्हें पकड़ लिया। इसी प्रकार कुटुंब के लोग धन–संपत्ति के लिए आपस में झगड़ाकर शत्रुओं के वश में पड़ जाते हैं। अतएव "भाई–बंधुओं का कर्तव्य है कि वे एक साथ भोजन करें, आपस में वार्तालाप करें, एक दूसरे के सुख–दुख पूछें और आपस में मिलते–जुलते रहें। परस्पर विरोध करना कभी भी उचित नहीं है।"[1] पवित्र

---

1. **सम्भोजनं संकथनं सम्प्रश्नोऽथ समागमः।**
   एतानि ज्ञातिकार्याणि न विरोधः कदाचन उद्योग० ,

मन वाले बड़े-बूढ़ों की सेवा और संगति करते रहते हैं। जो धन को पाकर भी तृष्णा-वश दीन बने रहते हैं वे कलह करके अपना धन शत्रुओं को दे डालते हैं। जैसे जलती लकड़ी अलग-अलग कर देने पर धुआं देती है और एक साथ रहने पर जलती है वैसे कुटंबी अलग-अलग होकर दुर्बल हो जाते हैं और एक साथ रहकर उन्नति करते और बलवान बने रहते हैं।

विदुर ने दूसरा चुटकुला सुनाया—हम एक बार गंधमादन पर्वत पर गये थे। वहां एक गहरी गुफा में एक मधु का घड़ा देखा। भीलों ने उसे पाने के लिए लालच किया। वे यह नहीं देख सके कि वहां कोई कूल-किनारा नहीं है। वहां सर्प भी हैं। एक भील मधु को लेने के लिए उस गुफा में कूद पड़ा और अपनी जान खो दी। राजा धृतराष्ट्र! आपका पुत्र दुर्योधन केवल राज्य रूपी मधु को देखता है। उसके पीछे वह अपना भावी विनाश नहीं देखता। यह सारी पृथ्वी का राज्य अकेला ही भोगना चाहता है। महाराज धृतराष्ट्र, आप युधिष्ठिर को अपनी गोद में बैठाइए। युद्ध अच्छा नहीं है। युद्ध छिड़ जाने पर विजय किसकी होगी, यह कहा नहीं जा सकता।

धृतराष्ट्र पुनः दुर्योधन को समझाते हैं, परंतु दुर्योधन तो समझने से रहा। धृतराष्ट्र संजय से कहते हैं कि तुम बताओ कि यदि युद्ध हो ही जाय, तो किस पक्ष की विजय की संभावना है? दोनों के बल-अबल और गुण-दोष को तुम जानते हो, अएतव तुम बताओ।

संजय ने धृतराष्ट्र से कहा—मैं एकांत में आपसे कोई बात नहीं कह सकता, क्योंकि इससे आपके मन में दोष-दृष्टि की संभावना हो सकती है। अतएव आप अपने पिता वेदव्यास तथा महारानी गांधारी को भी बुला लीजिए। उनके सामने ही सब बातें कहूंगा। ये दोनों धर्म के ज्ञाता, विचारक तथा तथ्य को समझने वाले हैं। अंततः वेदव्यास तथा गांधारी का भी आगमन हुआ और फिर धृतराष्ट्र के सामने लेखक संजय के द्वारा श्रीकृष्ण का सर्वहर्ता-कर्ता के रूप में वर्णन करवाता है। संजय धृतराष्ट्र को यह भी उपदेश करते हैं कि आप तत्त्वज्ञान की साधना करके श्रीकृष्ण को प्राप्त हो जायंगे। मन-इंद्रियों को वश में रखना, प्रमाद से दूर रहना और किसी प्राणी की हिंसा न करना श्रीकृष्ण को पाने के साधन हैं।

इसके बाद श्रीकृष्ण के अनेक नामों की व्युत्पत्तियों का वर्णन चलता है। फिर धृतराष्ट्र, एकहत्तर ( )वें अध्याय के सात श्लोकों में श्रीकृष्ण का गुणगान करते हैं और अंततः धृतराष्ट्र से कहलाया गया है—जिन्होंने तीनों लोकों का सृजन किया है, जिन्होंने देवों, असुरों, नागों और राक्षसों को भी जन्म

दिया है और जो ज्ञानी तथा राजाओं के प्रधान हैं, उन इंद्र के छोटे भाई वामन रूप भगवान श्रीकृष्ण की मैं शरण ग्रहण करता हूं।"[1] (अध्याय –)।

मीमांसा

संजय द्वारा अगले प्रातः कौरवों की सभा में पांडवों का संदेश सुनाना था और उसके बीच में विदुर के नीति का वचन और सनत्सुजात का ब्रह्मज्ञान रखना था, इसलिए उन्हें एक ही रात में कहलवा डाला गया। यह सब लेखक की महिमा है।

श्रीकृष्ण और अर्जुन की महिमा नर–नारायण के रूप में की गयी है। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"संजय ने एक सौ तीन त्रिष्टुप श्लोकों में अर्जुन की ओर से पांडवों और कृष्ण के विविध पराक्रमों का वर्णन किया, जिनमें अनेक प्रकार से दुर्योधन को घुड़कते हुए युद्ध के भयंकर परिणाम के विषय में सावधान किया गया है। यह प्रकरण अत्यंत तेजस्वी भाषा में भागवतों द्वारा लिपिबद्ध किया गया जान पड़ता है। इसके अनंतर भीष्म ने नर–नारायण की महिमा का बखान किया। उस कीर्तन को ब्रह्मा के मुख में रखा गया है। इसके अनुसार नर–नारायण देवों के भी पूर्वज देव हैं। एक रथ में स्थित सनातन महात्मा हैं। कृष्ण नारायण का रूप और अर्जुन नर का रूप है। एक ही शक्ति तत्त्व नारायण और नर के रूप में द्विधा विभक्त हो गया है। नर–नारायण की महिमा के विषय में यह दृष्टिकोण भागवतों की एकान्तिन शाखा का था, जिसका उल्लेख भागवत में भी आया है।

"इस वर्णन में एक बात स्पष्ट की गयी है कि नर और नारायण पूर्व देव थे। वे ही वासुदेव और अर्जुन के रूप में प्रकट हुए। इससे सूचित होता है कि वैदिक परंपरा में नर–नारायण की जो उपासना स्वीकृत हो चुकी थी, उसे ही कालांतर में भागवतों ने वासुदेव और अर्जुन की पूजा के रूप में स्वीकार किया।"[2]

महाभारत में कृष्ण–उपासकों ने बहुत प्रक्षेप किये हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं–"स्पष्ट है जब सभा के लोग उठ गये थे तभी यह प्रकरण समाप्त हो

---

1. **त्रैलोक्यनिर्माणकरं जनित्रं देवासुराणामथ नागरक्षसाम्।**
   नराधिपानां विदुषां प्रधानमिन्द्रानुजं तं शरणं प्रपद्ये
   (उद्योग पर्व, अध्याय , श्लोक)
2. **भारत सावित्री, पृ. – ।**

जाना चाहिए था। उसके बाद के अध्याय थेकली की तरह हैं, जिसे भागवतों ने जोड़ा है। कुछ कश्मीरी प्रतियों में ये अध्याय हैं भी नहीं। गुप्त युग में वासुदेव कृष्ण की जो अतिशय महिमा लोक में प्रख्यात हुई, उसी का सार यहां मिलता है। जैसे–धनुर्धारी अर्जुन और वासुदेव परम पूज्य हैं। भगवान कृष्ण का चक्र द्युलोक तक अपनी शक्ति से घूम रहा है। कृष्ण चाहें तो संसार को भस्म कर सकते हैं। जहां सत्य है, जहां धर्म है, वहां कृष्ण हैं। और जहां कृष्ण हैं वहां जय है। पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक में पुरुषोत्तम विष्णु क्रीड़ा करते हुए सब कर्म करते हैं। कालचक्र, संसारचक्र और युगचक्र को भगवान केशव रात-दिन अपनी शक्ति से घुमा रहे हैं। चर और अचर, काल और मृत्यु सबके स्वामी वे ही हैं। महायोगीश्वर हरि सबके अध्यक्ष होकर भी एक सामान्य किसान की तरह काम करते हैं। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने पूछा–हे संजय! तुम कृष्ण का माहात्म्य कैसे जानते हो? मैं उसे क्यों नहीं जानता? संजय ने खरा उत्तर दिया–राजन! तुम्हारी विद्या सच्ची विद्या नहीं है। मेरी विद्या बुझती नहीं। तुम विद्याहीन और तमोग्रस्त होने के कारण केशव को नहीं जानते। धृतराष्ट्र ने फिर पूछा–हे संजय! ऐसी क्या बात है कि तुम्हारा ज्ञान कम नहीं होता है? और तुम अपनी स्थायी भक्ति से मधुसूदन को जानते हो? संजय ने कहा–मैं कपट का सेवन नहीं करता। विपरीत धर्म का आचरण नहीं करता। शुद्ध भाव से भक्ति करता हूं और शास्त्र में जैसा कहा है, वैसा कृष्ण को जानता हूं (–)। संजय के ये चार वाक्य मानो गुप्तकालीन किसी भागवत की आस्था का निचोड़ है। इसी बातचीत में भाग लेते हुए व्यास जी ने धृतराष्ट्र की कृष्णभक्ति की सराहना करते हुए बिलकुल स्पष्ट शब्दों में गुप्तकालीन एकायन मार्ग अर्थात एकान्तिन भागवतों का उल्लेख किया है। इससे सूचित है कि गुप्त युग में धृतराष्ट्र को भी महाभागवतों की सूची में सम्मिलित कर लिया गया था और स्वयं व्यास जी के द्वारा इस पर छाप लगायी गयी है। एक शब्द और ध्यान देने योग्य है, वह है 'आगम'। गुप्तयुग में पांचरात्र और माहेश्वर आदि इन शास्त्रों को आगम कहने की परिपाटी चल गयी थी। कालिदास ने अनेक धर्ममार्गों के भिन्न शास्त्रों को आगम कहा है।

"भागवत में भी भागवत शास्त्र को आगम कहा गया है (, ,)। अध्याय में विष्णु के भिन्न नामों का निर्वचन संजय ने धृतराष्ट्र से कहा है। यह भी भागवतों के साहित्य की एक नयी शैली थी। महाभारत शांति पर्व (अ० –) में इसे गुण-कर्मज, अर्थात गुण और कर्मों के आधार पर नामों के निर्वचन की शैली कहा है। मत्स्यपुराण (अ०) में श्रीकृष्ण, नारायण,

गोविंद आदि सोलह नामों की ऐसी ही व्युत्पत्तियां कही गयी हैं। वायु पुराण अध्याय एवं में तथा लिंग पुराण अध्याय में भी हम इस शैली को पाते हैं। यद्यपि इन सूचियों में आये हुए नाम भिन्न हैं। इस शैली का उत्कट रूप विष्णु सहस्रनाम के शांकर भाष्य में प्राप्त होता है। यद्यपि यह उत्तर गुप्तकाल के बाद का है।"[1]

"विष्णु के लिए हरि शब्द का प्रयोग कुषाण युग से आरंभ हुआ। उससे पूर्व महाभाष्य, अर्थशास्त्र आदि बड़े–बड़े ग्रंथों में यह शब्द केवल इंद्र, अश्व आदि अर्थों में है। अतएव विष्णु वाची हरि शब्द का यह प्रयोग (,) इस प्रसंग के बाद में जोड़े जाने का सूचक है।"[2]

. श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर जाते समय युधिष्ठिर, भीम, नकुल, द्रौपदी आदि के विचार जानना

संजय जब युधिष्ठिर के पास से हस्तिनापुर लौट गये, तब उन्होंने अपने भाइयों तथा द्रुपद आदि से मिलकर कहा कि हम लोगों को श्रीकृष्ण से प्रार्थना करना चाहिए कि वे कौरव–सभा में जाकर ऐसा प्रयत्न करें कि युद्ध करने का अवसर न आये। यही हमारा पहला कर्तव्य है और यही कल्याणकारी है। सब लोग श्रीकृष्ण के पास गये।

युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा–मित्रों का सहयोग करने का यही उत्तम समय आया है। आपके अलावा कोई नहीं दिखता जो विपत्ति से मेरा उद्धार करे। जैसे आप यादव की रक्षा करते हैं, वैसे हमारी रक्षा करें। श्रीकृष्ण ने कहा–आप जो कहना चाहें वह कहें। मैं उसे करूंगा।

युधिष्ठिर ने कहा–धृतराष्ट्र जो कुछ करना चाहते हैं वह संजय ने आकर बता दिया है, वे मेरा राज्य दिये बिना संधि करना चाहते हैं। हम यही मानकर बारह वर्ष वनवास तथा एक वर्ष अज्ञातवास का कष्ट भोगे हैं कि राजा धृतराष्ट्र अपनी शर्त पर दृढ़ रहेंगे; किंतु वे दुर्योधन को अनुचित रूप में संतुष्ट करने के चक्कर में राज्य के लोभ में डूबे हैं। इससे बड़े दुख की बात क्या हो सकती है कि मैं अपनी माता और मित्रों का भरण–पोषण तक नहीं कर सकता। मैंने धृतराष्ट्र से केवल पांच ही गांव मांगा था–अविस्थल, वृकस्थल, माकंदी,

---

1. **भारत सावित्री, पृ० – ।**
2. **भारत सावित्री, टिप्पणी, पृ० ।**

वारणावत तथा अंतिम कोई पांचवां गांव दे दें। इनमें हम पांचों भाई मिलकर रह लेंगे जिससे हमारे कारण भरतवंशियों का विनाश न हो।

जो व्यक्ति जन्म से निर्धन है, वह उतना दुखी नहीं होता। दुखी वह होता है जो पहले धन की सुविधा में पला है और पीछे निर्धन हो गया है। यद्यपि मनुष्य अपने अपराध से संकट में पड़ता है, तथापि वह इंद्र आदि देवताओं को दोष देता है। शास्त्र भी निर्धनता का दुख नहीं मिटा सकते। निर्धन व्यक्ति क्रोधी हो जाता है। श्रीकृष्ण आपने मुझे प्रत्यक्ष देखा है कि मैं किस तरह राज्य से भ्रष्ट होकर कितने दुख में इस समय रह रहा हूं। अपनी पैतृक संपत्ति के लिए यदि हम मार डाले जायं तो भी अच्छा है।

हमारा पहला काम है हम कौरवों से संधिपूर्वक अपना राज्य प्राप्त करें और शांत भाव से दोनों पक्ष संपत्ति का उपभोग करें। दूसरा पक्ष है कि कौरवों को मारकर सारा राज्य ले लें। परंतु यह भयंकर क्रूर कर्म की पराकाष्ठा होगी; क्योंकि इसमें निरपराध लोगों की हत्या होगी। हत्या तो शत्रु की भी नहीं करना चाहिए। फिर जो सगे-संबंधी और पूज्यजन हैं उनकी हत्या करना कितना बुरा होगा? हमारे विरोधियों में हमारे भाई-बंधु और गुरुजन ही हैं। उनकी हत्या करना बहुत बड़ा पाप है। युद्ध में अच्छी बात क्या है? क्षत्रियों का यह धर्म पाप रूप है जिसे हमें विवश होकर करना पड़ेगा। क्षत्रिय क्षत्रिय को मारता है, मछली मछली को खाती है और कुत्ता कुत्ते को काटता है।

युद्ध सदैव पाप रूप है। दूसरे को मारने वाला स्वयं भी मारा जाता है। जो युद्ध में मारा गया उसके लिए जय और पराजय दोनों बराबर हैं। पराजय मृत्यु से अधिक दुखदायी है, किंतु विजयी को भी धन-जन के नाश का दुख देखना पड़ता है। विजय के बाद युद्ध में मारे गये अपने पुत्रों एवं बंधुओं को जब मनुष्य नहीं देखता तब वह सब ओर से निराश हो जाता है और उसे जीना भी अच्छा नहीं लगता। शत्रुओं को मारने पर भी उनके लिए मन में पश्चाताप बना रहता है। विजय भी स्थिर शत्रुता पैदा करती है। पराजित पक्ष दुख में समय बिताता है। जो किसी से शत्रुता न रखकर शांति से जीवन व्यतीत करता है, वह जय-पराजय की चिंता से रहित सुखपूर्वक जीवन बिताता है। वैर बांधने वाला मनुष्य सदैव दुख की नींद सोता है, जैसे कोई सर्प वाले घर में रहकर भयभीत रहता है।

हम न राज्य त्याग सकते हैं और न लड़ाई चाहते हैं। यदि नम्रता अपना लेने से शांति हो जाय तो यह उत्तम बात होगी। कुत्ते पहले पूंछ हिलाते हैं, फिर गुर्राते और गर्जते हैं। फिर निकट पहुंचकर दांत दिखाते और भूंकते हैं। इसके बाद

लड़ते हैं। जो उनमें शक्तिशाली होता है, वही उस मांस को खाता है जिसको लेकर उनमें लड़ाई हुई है। यही मनुष्यों की दशा है। इनमें कोई विशेषता नहीं है। पिता, राजा और वृद्ध सर्वदा आदर के योग्य हैं। इसलिए धृतराष्ट्र हमारे लिए सदैव सम्माननीय और पूज्य हैं। धृतराष्ट्र अपने पुत्र दुर्योधन के मोह में अत्यंत डूबे हैं, इसलिए न्याय नहीं कर सकेंगे। माधव! ऐसी स्थिति में हम कैसा बरताव करें जिससे हमें अर्थ और धर्म से वंचित न होना पड़े? ऐसे महान संकट के समय आप ही हमारे मार्गदर्शक हैं।

श्रीकृष्ण ने कहा–महाराज युधिष्ठिर! मैं दोनों पक्षों के हित के लिए कौरवों की सभा में जाऊंगा। यदि आपके हित की रक्षा करते हुए मैं संधि करा ले गया तो यह बहुत बड़ा काम होगा। इससे मैं दोनों पक्षों के लोगों को मानो मौत के मुख से बचाने वाला हो जाऊंगा।

युधिष्ठिर ने कहा–मेरा यह विचार नहीं है कि आप कौरवों की सभा में जायं, क्योंकि आपकी बात दुर्योधन नहीं मानेगा। इस समय दुर्योधन के पास भूमंडल के राजा इकट्ठे हैं। उनके बीच में यदि आपका कुछ अनिष्ट हो गया तो धन, सुख, देवत्व और संपूर्ण पृथ्वी भी हमें प्रसन्न नहीं कर सकेंगे।

श्रीकृष्ण ने कहा–मैं दुर्योधन की धारणा जानता हूं, परंतु वहां जाकर एक बार संधि कराने का प्रयास करने से हम लोग राजाओं की दृष्टि में निंदा के पात्र नहीं रह जायंगे। मेरा वहां जाना निरर्थक नहीं होगा। हो सकता है, सफलता मिल जाय। यदि सफलता न मिली, तो हम निंदा के पात्र नहीं रह जायंगे, और मुझे अपने लिए कोई भय नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा–आपको जैसा उचित लगे, वैसा करें, आप प्रसन्नतापूर्वक कौरवों की सभा में जायं। मैं आशा करता हूं कि आप अपने कार्य में सफल होकर हमें दर्शन देंगे। आप जाकर कौरवों को शांत करें जिससे हम लोग सुख से रह सकें। आप हमें और कौरवों को अच्छी तरह जानते हैं। जिससे हम सबका भला हो, वैसी बात करना भी आप जानते हैं। जो हितकर बात हो वह चाहे कोमल हो अथवा कठोर, आप अवश्य कहें।

श्रीकृष्ण ने कहा–युधिष्ठिर! मैंने पहले संजय की और आज आपकी बातें सुनीं। जो कौरवों की मनसा है वह भी मैं जानता हूं। आपके विचारों से भी मैं अपरिचित नहीं हूं। आपकी बुद्धि धर्म में स्थित है और कौरवों की बुद्धि शत्रुता में। आप बिना युद्ध किये जो मिल जाय उसको बहुत समझेंगे; परंतु महाराज! यह क्षत्रिय का स्वाभाविक कर्म नहीं है। शास्त्र यह नहीं बताते हैं कि क्षत्रिय भीख मांगे। आप जितना नरमी का बरताव करेंगे, उतना दुर्योधन आपके राज्य

को दबाकर ही रखना चाहेगा। आप यह नहीं समझें कि धृतराष्ट्र के पुत्र अपने को दुर्बल मानकर या आप पर कृपा कर या धर्म की बात सोचकर आपका राज्य लौटा देंगे। कौरवों की संधि न करने की मनसा इसी से जानी जा सकती है कि उन्होंने आपको लंगोटी पहनाकर बारह वर्ष का वनवास तथा एक वर्ष का अज्ञातवास दिया, फिर भी उनको इसके लिए पश्चाताप नहीं है। आप जब वनवास जाने लगे हैं तब दुर्योधन ने अपने लोगों से कहा है–"अब पांडवों के पास इस संसार में 'अपनी' कहने के लिए थोड़ी भी कोई वस्तु नहीं रह गयी है। केवल उनके नाम और गोत्र बचे हैं, परंतु वे भी नहीं रहेंगे। कुछ दिनों में इनकी भारी पराजय होगी। ये सब मेरे पास ही मरेंगे।" मैं कौरवों की सभा में जाऊंगा, आपकी स्वार्थ सिद्धि में बाधा न रखते हुए उनसे संधि करने का प्रस्ताव रखूंगा। कौरव संधि की बात न मानेंगे तो राजा-प्रजा उन्हीं की निंदा करेंगे। मैं वहां जाकर कौरवों की युद्ध विषयक तैयारी की बात जान-सुनकर आपकी विजय के लिए लौट आऊंगा। यह निश्चित मानिये कि दुर्योधन अपने जीते जी आपका राज्य नहीं लौटायेगा।

भीम ने श्रीकृष्ण से कहा–माधव! आप दुर्योधन से शांतिवार्ता कीजिए, युद्ध की बात सुनाकर उसको भयभीत न कीजिए। आप जानते हैं कि दुर्योधन क्रोधी स्वभाव का है। वह बड़ी-बड़ी अभिलाषाएं रखता है। अतएव उससे कठोर बात न कहिएगा। इसके बाद भीम ने अठारह पुराने राजाओं के नाम लिए हैं जो युद्ध में परिजनों तथा मित्रों सहित मौत के घाट उतरे थे।

श्रीकृष्ण ने कहा–भीम! तुम तो पहले सदैव युद्ध ही मांगते थे, अमर्ष में भरे सांस लेते हुए दुर्योधन, दुःशासन आदि को पीस डालने की बात सोचते थे, आज यह तुम्हारे में कैसे कायरता आ गयी है? विषाद न करो, अपितु क्षत्रियोचित वीरता पर डट जाओ।

भीम ने कहा–कृष्ण! मैं करना कुछ चाहता हूं, परंतु आप मुझे कुछ और ही समझ रहे हैं।

फिर इसके बाद भीम ने अपनी गर्वोक्ति की बारिश की है। इसके बाद श्रीकृष्ण ने भीम को आश्वासन दिया है। प्रारब्ध और पुरुषार्थ के विषय में लोगों को संदेह रहता है, किंतु विवेकवान पुरुषार्थ पर बल देते हैं। तुम कायरतापूर्वक वचन बोले थे, इसलिए मैंने तुम्हारे में जोश भरने के लिए ये वचन कहे।

अर्जुन ने श्रीकृष्ण से यही बात कही कि कौरवों से संधि होना अच्छा है। यद्यपि कौरवों के लक्षण शत्रुता के हैं, फिर भी अपना प्रयत्न शांति के लिए ही होना चाहिए। जब शांति से काम नहीं चलेगा, तब युद्ध होना ही है।